http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

परीक्षामुखसूत्र प्रवचन

भाग 23

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[२१, २२, २३ भाग]

●

प्रवक्ता :
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

●

सम्पादक :
पं० देवचन्द जी शास्त्री, सहारनपुर

●

प्रबन्ध-सम्पादक :
बैजनाथ जैन, ट्रस्टी सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला
चौदगार बकुतला, सहारनपुर

●

प्रकाशक :
मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

●

मुद्रक :
पं० काशीराम शर्मा 'प्रफुल्लित'
साहित्य प्रेस, सहारनपुर

●

सन् १९६६] सर्वाधिकार सुरक्षित [न्यौछावर ३ रु.

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[त्रयोविंश भाग]

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी सहजानंद जी महाराज

●

पदार्थके सामान्य स्वरूपका वर्णन— इस ग्रन्थमें वस्तुपरीक्षाके साधनका वर्णन किया है। परीक्षाका साधन है ज्ञान। ज्ञानका स्वरूप, भेद विवेचन आदि कह कर जब ज्ञानके विषयकी जिज्ञासा हुई तो सिद्धान्त कहा गया कि "सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः" सामान्यविशेषात्मक पदार्थ प्रमाणका (ज्ञानका) विषय है। इसके विशेष विवरणके समय अवसर पाकर विशेषवादीने यह बाधा देनेका यत्न किया कि सामान्य व विशेष स्वयं स्वतन्त्र पदार्थ हैं इस कारण सामान्यविशेषात्मक पदार्थ होता ही नही सो ज्ञानके विषय जैसे सामान्य व विशेष हैं, उसी प्रकार द्रव्य गुण कर्म भी हैं और इनका परस्पर सम्बन्ध रचने वाला समवाय भी पदार्थ हैं। यों द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय इन छह पदार्थोंको ज्ञानका विषय कहा है। इनके भेद बताये हैं द्रव्य ७ होते हैं, गुण २४ होते हैं तथा कर्म ५ होते हैं। सामान्य दो होते हैं, विशेषता से अनेक होते हैं। विशेष अनेक होते हैं और समवाय एक होता है। इनसेमें ६ द्रव्योंका २४ गुणोंका, ५ कर्मोंका जैसा कि विशेषवादमें स्वरूप कहा है उन सबका निराकरण किया। अब सामान्य पदार्थके स्वरूपकी भी बात सुनिये! सामान्यको पदार्थ कोई रूढ़ि में, व्यवहारमें, बोलचालमें भी नही कहते हैं। सामान्यको धर्म कहनेकी व्यवहारमें भी प्रथा है। सामान्य स्वतंत्र कुछ नही, पदार्थ नही, वह तो धर्म है। पदार्थके याने वस्तुके उस धर्मको सामान्य धर्म कहते हैं जो धर्म अन्य वस्तुओंमें भी पाया जाय। वह सामान्य धर्म अनेक पदार्थोंमें रहने वाला हो उसे तिर्यक् सामान्य कहते हैं तथा एक ही पदार्थके पूर्वोत्तर सर्व पर्यायोंमें जो सामान्य धर्म हो उसे ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं। वस्तुके साधारण धर्मके अतिरिक्त अन्य कुछ भी सामान्य नामक पदार्थ नही है। सामान्य पदार्थ का निराकरण इसी अध्यायके ५ वें सूत्रके विशेषरूपसे कर ही दिया गया है।

विशेषवादियोंका विशेष पदार्थ विषयक सद्भावका कथन— विशेषवादी कहते हैं कि विशेष नामका पदार्थ तो जुदा ही पदार्थ है. विशेष नित्य द्रव्यमें रहने वाले होते हैं और वे परमाणु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मनमें रहनेसे अत्यन्त व्यावृत्ति की बुद्धिके कारणभूत है। याने ये विशेष अन्त्य विशेष बताये जा रहे हैं। ये नित्य द्रव्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

में रहते हैं तथा एक दूसरेसे अत्यन्त पार्थक्यके कारणभूत हैं और, अनन्त हैं, तथा ये अन्तमें है इसलिए अंत्य हैं। जब संसारका विनाशारम्भ होता है तब संसारके विनाशारम्भमें जो कोटिभूत हैं ऐसे परमाणुवोंमें ये विशेष पाये जाते हैं, मुक्त आत्माओंमें विशेष पाये जाते हैं और मुक्तमनोंमें विशेष पाये जाते हैं। यों सब अंत अंत वाली वस्तुवोंमें होनेसे इन विशेषोंको अंत्य कहते हैं, अन्त्यका अर्थ है अन्तमें अर्थात् अवसान में, जिससे आगे कोई विशेष नही होता ऐसे अन्तमें जो होता है वह अन्त्य कहलाता है। जिससे आगे अन्य कोई विशेष नही होता। गुणादिक भी विशेष हैं, लेकिन वे सामान्य रूप विशेषोंसे भिन्न हैं, वे अन्त्य नहीं कहलाते। जिनसे आगे कोई विशेष नही है उन अन्त्योंमें ही उनका वैशिष्टय समाप्त हो जाता है। इस कारण ये अन्त्य कहलाते हैं। तो इन विशेषोंके लक्षणमें जो दो खास विशेषण दिए हैं नित्य द्रव्यमें रहने वाले और अन्तमें इन दोनों विशेषणोंका विशेष महत्त्व है। नित्य द्रव्यमें रहने वाला है। इसका भाव यह हुआ कि परमाणु आदिकमें यह रहता है सो परमाणु नित्य है। मुक्त आत्माओंमें रहता है वह भी नित्य है। मुक्त मनमें रहता है वह भी नित्य है। यों नित्य द्रव्यमें रहता है और इसकी आखिरी बात बड़ी होती है। तीसरी खासियत है विशेषकी यह कि वह एक दूसरेसे व्यावृत्तकी बुद्धिका विषयभूत है। याने इन विशेषोंसे यह जाना जाता है कि एक दूसरेसे यह अत्यन्त भिन्न है। तब विशेषोंका लक्षण सही बन जाता है। इससे सिद्ध है कि विशेष नामका पदार्थ भी वास्तविक है।

विशेषवादियों द्वारा विशेष सद्भावसाधक प्रमाणका उत्थापन – विशेष है भी इस सत्ताको सिद्ध करने वाला परिमाण है कि वे चूंकि व्यावृत्ति बुद्धिके विषयभूत हैं। तो इससे ये सब पृथक हैं इस प्रकारकी बुद्धि जो बनती है वह इन ही विशेषोंके आधारपर तो बनती है, सो व्यावृत्तिबुद्धि विषयत्व विशेषोंका सद्भाव सिद्ध करता है। जैसे कि हम जैसे लोगोंसे गौ आदिकमें व्यावृत्त प्रत्यय देखा गया है। जैसे यह गौ अश्वसे पृथक् है। कैसे समझा कि आकृति पृथक् पृथक् है गाय और घोड़ेकी। गुण भी पृथक् पृथक् हैं। उनका चलना क्रिया करना, ये भी पृथक् हैं। अवयवोंका संयोग भी भिन्न भिन्न है। तो इन सबके निमित्तसे जो गौमें अश्वादिकसे जुदा है, यह इस प्रकारका ज्ञान देखा जाता है और गाय गायमें भी रंग आदिकके निमित्तसे भेद देखा जाता है, यह गाय सफेद है। शीघ्र चलने वाली है। मोटे कंधे वाली है आदि। इस तरहसे उनमें भी विशेष देखा जाता है। तो जिस तरह पदार्थोंमें हम लोगोको किन्हीं निमित्तोंके कारण विशेष दृष्ट हो रहा है उस ही प्रकार हमसे विशिष्ट विलक्षण जो योगीजन हैं उनको नित्य पदार्थोंमें जिसकी आकृति गुण और क्रिया समान है ऐसे भी परमाणुवोंमें मुक्त आत्माओंसे मुक्त आत्माके मनोंमें अन्य निमित्त का अभाव होनेपर भी जिस बलसे उन योगियोंको ये विलक्षण है इस प्रकारके ज्ञानकी प्रवृत्ति होती है वे ही तो अन्त्यविशेष कहलाते हैं। जिनका कि विशेषक ज्ञानसे सत्त्व जाना गया है। अन्त्य विशेषोंकी परख योगीजनोंको होती है और यहांके विशेषोंकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परख हम लोगोंको भी हो जाती है। तो इस तरह अन्त्यविशेष और सामान्यरूप विशेष ये सब पदार्थ कहलाते हैं।

असंकीर्ण पदार्थोंमें विशेषपदार्थकी परिकल्पनाका आनर्थक्य— अब उक्त शङ्काके समाधानमें कहते हैं कि यह भी केवल अपना अभिप्राय भर जाहिर करने तककी बात है। यह विकल्प पुष्ट नहीं है क्योंकि विशेषोंका लक्षण ही नहीं बनता। इसलिए विशेष सत् है ही नहीं। प्रथम तो विशेषके लक्षणके इस अंशपर ही दृष्टि डाल लो कि जो कहते ना, कि यह विशेष नित्य द्रव्यमें रहता ही नहीं, इसमें असंभव दोष है, क्योंकि सर्वथा नित्य कोई द्रव्य ही नहीं होता। फिर नित्य द्रव्यमें रहनेकी बात ही क्या? पदार्थ समस्त नित्यानित्यात्मक होते हैं। न कोई सर्वथा नित्य होता न कोई सर्वथा अनित्य होता। जब नित्य कोई पदार्थ ही न रहा, तब विशेषका यों लक्षण बनाना यह विशेष नित्य द्रव्यमें रहता है। यह तो दूरसे ही हट जाती है बात और दूसरी बात जो यह कही है कि योगियोंके उत्पन्न हुए वैशेषिक ज्ञानके बलसे इन अंत्य विशेषोंका सत्त्व सिद्ध किया जाता है। वह भी बात अयुक्त है, क्योंकि उन परमाणु आदिकका जो स्वरूप जो कि उन परमाणुवोंके निजके स्वभावमें व्यवस्थित है वह परस्परसे असंकीर्ण रूप है याने जुदा है अथवा संकीर्ण स्वभावरूप है? यदि कहो कि उन परमाणु आदिकका स्वरूप जो कि उनका उनमें है वह परस्पर असंकीर्णरूप है तो समझ लीजिये कि अपने आप ही स्वतः असंकीर्ण परमाणु आदिकके रूपका उपालम्भ होनेसे योगीजनोंके उन परमाणुवोंमें विलक्षणताकी प्रतिपत्ति होगी। फिर कोई दूसरे विशेष पदार्थोंकी कल्पना करना व्यर्थ है। जब उन योगीजनोंने परस्पर असंकीर्ण याने एक दूसरेसे अत्यन्त जुदे अपने अपने स्वरूपमें व्यवस्थित परमाणुवोंका स्वरूप जाना तो लो—वे परमाणु तो स्वयं ही एक दूसरेसे अत्यन्त जुदे थे। फिर जुदे हो गए। अब विशेष नामक पदार्थकी कल्पना करनेकी आवश्यकता क्या रही जिस से कि उन परमाणुवोंमें परस्पर भिन्नताकी बुद्धि की जाती है।

संकीर्ण पदार्थोंमें विशेष पदार्थके कारण व्यावृत्तिके प्रत्ययकी भ्रान्तताका प्रसंग—यदि द्वितीय विकल्प लोगे कि संकीर्ण स्वभाव वाले परमाणुवोंका स्वरूप योगियोंके द्वारा जाना जाता है तो अब देखिये कि परमाणुवोंका स्वरूप परस्पर संकीर्ण स्वभाव वाला हो गया एक दूसरेसे मिलने वाला। एक दूसरेमें प्रवेश वाला परमाणुवोंका स्वरूप बन गया। तब विशेष नामक पदार्थान्तरकी उपस्थिति होनेपर भी परस्पर अत्यन्त मिले हुए, संकीर्ण परमाणु आदिकमें अब विशेषके बल से योगियोंके भिन्न भिन्न रूपसे ज्ञान बने तो भिन्नता वाला ज्ञान सही कैसे हो सकता है? जब मूलमें परमाणुवोंका स्वरूप तो संकीर्ण स्वीकार कर लिया तो अब संकीर्ण ही जाने तब तो सही ज्ञान कहलायगा। पर कह रहे हो कि योगीजन विशेष पदार्थके बलसे उन संकीर्ण स्वभाव वाले परमाणुवोंमें विशेष विलक्षण विलक्षण हैं ऐसी बुद्धि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किया करते हैं। तो व्यावृत्तकी बुद्धि तो भ्रान्त हुई। असलियत तो मूलमें थी। परमाणु संकीर्ण स्वभाव वाले जो मान लिये गए यथार्थता तो वह है। अब उस स्वरूप के विरुद्ध विशेष पदार्थके बलपर भिन्नताका ज्ञान किया जाय तो भिन्नताका ज्ञान भ्रांत रहा। अब परमाणुवोंमें परस्पर भेदका जो ज्ञान योगियोंने किया वह भ्रान्त कैसे रह सकेगा? क्योंकि देखो–वे जो परमाणु हैं वे स्वरूपसे तो अव्यावृत्त रूप हैं, संकीर्ण हैं। एक दूसरेसे मिले जुले। एक दूसरेसे अलग न हो सकने वाले ऐसे स्वरूपसे अव्यावृत्त उन परमाणुवोंमें अब व्यावृत्ताकार रूपसे ज्ञान किया जा रहा है तो भ्रान्तका तो लक्षण यह है कि पदार्थ जैसा नहीं है वैसा जानें। अब देखो –परमाणु तो है अव्यावृत्त स्वरूप, संकीर्णस्वभाव और योगीजन उन्हें जान रहे हैं व्यावृत्त रूप, तब उनका ज्ञान भ्रान्त ही रहा। परमाणु तो हैं संकीर्ण, एक दूसरेसे मिले हुए, प्रवेश किए हुए और योगी जानते हैं उन्हें व्यावृत्त, मिले हुए। तो योगियोंका ज्ञान भ्रान्त रहा, असलियत तो पदार्थके मूल स्वरूपमें है कि वे परमाणु परस्पर संकीर्ण हैं। और फिर जब उल्टा ज्ञान कर बैठे योगीजन कि परमाणु तो है संकीर्ण स्वभाव, अव्यावृत्त रूप, एकमेक और योगीजन जान रहे हैं व्यावृत्त स्वरूप। तो योगियोंका ज्ञान भ्रान्त हो गया और भ्रान्त ज्ञान वाले योगीजन योगी कहलायेंगे कि अयोगी? जिनका ज्ञान असत्य है। भ्रान्त है वे काहेके योगी? वे अयोगी बन बैठेंगे। इस कारण विशेष पदार्थ वाली बात नहीं बनती। पदार्थोंमें जिस तरहका स्वरूप पड़ा हो। स्वभाव बना हो वह तो उनका वास्तविक ही है और अन्य कुछ कल्पना वह तो कल्पना कारीगरका महल है। तथ्य कुछ नहीं है।

विशेषपदार्थवादियोंके विशेषोंमें वैलक्षण्य प्रत्ययकी अनुपपत्ति— और भी देखो! यदि विशेषनामक पदार्थान्तरके बिना विलक्षण प्रत्ययकी उत्पत्ति नहीं हो तो विशेषोंमें वैलक्ष्यकी उत्पत्ति कैसे हो? जैसे कि शंकाकार मानता है कि अनेक पदार्थोंसे ये विलक्षण हैं, ऐसे ज्ञानविशेष पदार्थके कारण ही होते हैं। विशेष पदार्थ न हो तो उनमें विलक्षणता की उत्पत्ति नहीं हो सकती। विशेष नामक पदार्थान्तरके बिना व्यावृत्त प्रत्ययकी उत्पत्ति नहीं होती है। तो फिर उन विशेषोंमें विलक्षणत्व प्रत्ययकी उत्पत्ति कैसे हो जायगी सो तो बताओ? पदार्थोंमें तो मानलो कि विशेष नामक पदार्थके कारण पदार्थोंमें जुदेपनका ज्ञान होता है। यह विशेष धर्म उस विशेष धर्मसे बिल्कुल जुदा है। तो यह बतलावो कि उन विशेषोंमें जो व्यावृत्त प्रत्ययकी उत्पत्ति होती है वह कैसे होगी? यदि कहो कि अन्य विशेष पदार्थोंके कारण हो जायगी। विशेषोंमें विलक्षणताका ज्ञान अन्य विशेषोंके कारण हो जायगा। तो इसमें अनवस्था दोष आता है, फिर उस दूसरे विशेषमें भी जो व्यावृत्ति प्रत्यय होगा उसके लिए तीसरा विशेष मानना पड़ेगा। इस तरह विशेष माननेकी परम्परा लम्बी होती जायगी कहींपर ठहरना न बन सकेगा। और यदि विशेषोंमें वैलक्षण्यका ज्ञान स्वतः विशेषोंसे माना है तो इस सिद्धान्तका भी विघात हो जायगा कि विशेष नित्य द्रव्यमें रहता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अब देखो ! विशेष तो अनित्य माना गया है और विशेषोंमें दूसरे तीसरे विशेष जो माने जा रहे हैं तो अब नित्यमें भी विशेष रहने लगा, यह भाव निकला। क्योंकि विशेष सारे अनित्य हैं और उन अनित्य विशेषोंमें वैलक्षण्यका ज्ञान करनेके लिये अन्य विशेष मानने पड़ रहे हैं। इससे यह बात न बन सकी कि विशेषोंमें वैलक्षण्यका ज्ञान अन्य विशेष पदार्थसे होता है

विशेषोंमें स्वतः वैलक्षण्य माननेपर सर्व पदार्थोंमें स्वतः वैलक्षण्यकी उपपत्ति—यदि कहो कि विशेषोंमें वैलक्षण्यका ज्ञान स्वतः ही हो जाता है कि विशेष धर्म इस विशेष धर्मसे विलक्षण है। तो फिर सभी पदार्थोंमें, परमाणुओंमें परस्परकी विलक्षणताका ज्ञान भी स्वतः क्यों नही मान लिया जाता। वह भी स्वतः ही माना जायगा। तो यों विशेष नामक पदार्थकी कल्पनाके लिये कोशिश करना, परिश्रम करना बेकार है। पदार्थ हैं वे सब, और उनमें धर्म रहते हैं। कुछ धर्म ऐसे हैं जो दूसरोंमें मिल जाते हैं। वे तो हुऐ सामान्य और कुछ धर्म हैं जो दूसरोंमें नहीं मिल सकते वे हो गए विशेष। तो यों पदार्थ स्वयं सामान्य विशेषात्मक होते हैं। पदार्थमें वैलक्षण्यका ज्ञान करनेके लिये विशेष नामक पदार्थ माननेकी आवश्यकता नहीं है उसकी सिद्धि ही नहीं होती। तो सामान्य विशेषात्मक पदार्थकी सिद्धिके विरोधमें विशेषवादियोंने जो यह कहा है कि विशेष तो स्वयं पदार्थ हैं। यह कहना उनका बिल्कुल अयुक्त साबित होता है। विशेष पदार्थ मानकर पदार्थमें विशेषता और वैलक्षण्यकी सिद्धि की ही नही जा सकती। अतः पदार्थको स्वयं ही सामान्य विशेषात्मक मानना युक्त है।

विशेषोंमें व्यावृत्तिबुद्धिको उपचरित माननेमें शंकाकारको अनिष्ट प्रसंग—शंकाकार कहता है कि विशेषोंमें अन्य अन्य विशेषोंके सम्बन्धसे व्यावृत्त बुद्धिकी कल्पना करनेमें अनवस्था आदिक दोष आते हैं तो उन बाधाओंको दूर करने के लिए इस प्रकार मान लेना चाहिये कि उन विशेषोंमें जो व्यावृत्त बुद्धि होती है वह उपचारसे होती है। पदार्थोंमें जो परस्पर व्यावृत्तबुद्धि होती है, यह इससे अलग है यह विभाग विशेष पदार्थसे हो जाता है और वे बुद्धियां मुख्य हैं। किन्तु विशेष विशेष धर्मोंमें परस्पर जो व्यावृत्त बुद्धि देखी जाती है वह उपचारसे होती है। इस शंकाके समाधानमें पूछते हैं कि व्यावृत्त बुद्धिके उपचारका अर्थ क्या है ? अन्योन्यव्यावृत्तरूप असत् वैलक्षण्यका विषयरूपसे आक्षेप करना इसका नाम उपचार है याने विशेषोंमें वैलक्षण्य है नहीं किन्तु मान लिया जाय तो फिर इस बुद्धिमें मिथ्यापन कैसे नहीं आया कि देखो वस्तुस्वभाव तो कुछ है नहीं, और है' इस विषयरूपसे बनाया जा रहा है तो यह तो विपरीत बात बन रही है। और, ऐसा ज्ञान करें यदि योगी तो वे योगी न कहलायेंगे, अयोगी कहलायेंगे। और, भी सुनो ! यह वस्तु स्वभाव जो वैलक्षण्य रूप है और उपचार रूप बनाया गया है उसको विषयरूपसे जो कुछ माना गया है,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विषयरूपसे जो कुछ माना गया है, विषयरूपसे कल्पित किया गया है तो क्या संशय के रूपसे कल्पित है या विपर्ययरूपसे कल्पित है ? यदि कहो कि संशयके रूपसे कल्पित है ऐसा उपचरित है तो व्यावृत्तरूपसे जिसके विषयकी प्रतिपत्ति चलित है, है कि नहीं, व्यावृत्त है, इस ही में जहाँ चलितपना हो रहा है ऐसा विषय करने वाले विशेषोंकी यथावत् प्रतिपत्ति सम्भव नहीं है जब संदिग्ध है या चलित प्रतिपत्ति है तो उसे यथार्थ ज्ञान कैसे कर सकते हैं, सो यथार्थ ज्ञानका अभाव हो गया। अब उस ज्ञानसे सहित जो भी पुरुष है। योगी है वह योगी तो न रहा। अयोगी हो गया क्योंकि उसे संशय है और, संशय है मिथ्याज्ञान। तो ऐसा मिथ्याज्ञानी वह अयोगी कहलाया। यदि कहो कि वह उपचरित वैलक्षण्य जिस विषयरूपसे उपचरित किया गया है वह विपर्यय रूपसे ही उपचरित है तो उसमें भी यही दूषण आता है कि वह विशेष रूपसे तो विकल था और उनको विशेषरूपसे यहाँ जबरदस्ती बनाया गया। मनाया गया तो ऐसा विपरीत ज्ञान होनेसे तो वह अयोगी ही रहा। जो इस मर्मको विपरीत प्रकार जान रहे हैं वे कहाँ योगी रह सकेंगे ?

विशेषोंमें व्यावृत्तिबुद्धि स्वतः माननेपर सर्वत्र व्यावृत्तिबुद्धिकी स्वतः सिद्धि—यदि कहो कि जब अनेक बाधायें तुम दे रहे हो अनवस्था आदिकरूप। तब ऐसा मानना चाहिये कि विशेषोंमें जो परस्पर व्यावृत्तबुद्धि हो रही है वह अन्य विशेषके कारण नहीं हो रही। किन्तु हो रही है स्वयं। तो समाधानमें कहते हैं कि यही बात फिर परमाणु आदिकमें मान ली जानी चाहिये कि इन परमाणुवोंमें द्रव्यों में जो परस्पर व्यावृत्त बुद्धि हो रही है वह विशेष निबंधनक नही है। विशेष गुणके कारण नहीं है, किन्तु जिस प्रकार विशेषोंमें व्यावृत्त बुद्धि स्वयं है इसी तरह पदार्थों में भी व्यावृत्त बुद्धि स्वयं मान ली जायगी। परमाणु आदिकमें विशेषोंके द्वारा परस्पर व्यावृत्त बुद्धिकी उत्पत्ति माननेपर समस्त विशेषोंसे परमाणुवोंकी व्यावृत्त बुद्धि फिर विशेषान्तरसे माननी पड़ेगी। याने परमाणु परमाणुवोंमें तो यह इससे अलग है इस प्रकारकी व्यावृत्त बुद्धि तुमने मान ली विशेषोंसे तो वे विशेष परमाणुवोंसे तो अलग हैं ना, एक चीज तो नहीं। जैसे परमाणु आदिक द्रव्य पदार्थ हैं इसी प्रकार विशेष भी पदार्थ है। तो समस्त विशेषोंसे अब परमाणुवोंमें जो व्यावृत्त बुद्धि हुई है वह अन्य विशेषान्तरोंसे हुई है और इस तरह उन अन्य विशेषोंसे उन सबकी जो व्यावृत्त बुद्धिकी जायगी वह अन्य विशेषान्तरोंसे होगी। इस तरह उसमें अनवस्था दोष आता है। यदि कहो कि उन विशेषोंमें और परमाणु आदिकमें स्वतः ही व्यावृत्त बुद्धि हो जाती है इसलिये वे परस्पर एक दूसरेकी पृथक बुद्धिके कारण हैं। तो सभीमें यही बात मान लो। सभी पदार्थ हैं और एक पदार्थका स्वरूप दूसरे पदार्थ से पृथक बतानेके लिये यह विशेष धर्म उस ही पदार्थमें जो स्वरूप पाया जा रहा है सो ही कारण है। फिर अन्य भिन्न विशेष पदार्थकी कल्पना करनेसे क्या लाभ ?

अमेध्य और दीपकके दृष्टान्त पूर्वक विशेष पदार्थोंमें स्वतः और द्रव्यों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में विशेष पदार्थके कारण वैलक्षण्यकी सिद्धिका शंकाकारका प्रयास—अब शंकाकार कहता है कि देखो ! जैसे अमेध्य है ये मल आदिक, तो ये स्वतः ही अपवित्र है, पर अन्य पुरुषका यदि उस अमेद्ध पदार्थसे सम्बन्ध हो जाय तो वह भी अशुद्ध कहलाने लगता है, इसी प्रकार विशेष तो स्वयं विशेषरूप है, स्वयं अपने आपकी व्यावृत्त बुद्धिके कारण हैं और अन्य पदार्थोंमें इस विशेष पदार्थके सम्बन्धसे व्यावृत्त बुद्धि होती है। जैसे कि किसी बालकका पैर मलमें भिड़ जाय तो लोग उस बालकको नही छूते और उसे नहलाकर ही उसे पवित्र मानते हैं। तो वहाँ कोई पूछे कि यह बालक अपवित्र क्यों कहलाने लगा ? तो उत्तर होगा कि मलका सम्बन्ध हो गया था। और, कोई पूछे कि मल अपवित्र क्यों कहलाता था ? तो वहाँ तो यह न कहा जायगा कि इसमें दूसरे मलका सम्बन्ध हो गया था। वह मल स्वयं अपवित्र है और दूसरेसे सम्बन्ध हो जाय तो उसको भी अपवित्र बनानेका कारण बनता है, इसी तरह यह विशेष स्वयं व्यावृत्त बुद्धि वाला है और इस विशेषका परमाणु आदिक पदार्थोंमें सम्बन्ध हो जाय तो उनमें भी व्यावृत्त बुद्धि बन जाती है। और भी सुनो कि जो तदात्मक नहीं हैं ऐसे पदार्थोंमें भी अन्य पदार्थके निमित्तसे यह ज्ञान होता ही है, जैसे कि दीपकसे भींट आदिक पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है। अंधेरा था, कपड़े वगैरह सब रखे थे, दीपक जला और कपड़े हैं ऐसा ज्ञान हो गया। तो देखो ! दीपक है अन्य पदार्थ और उसके निमित्त से पट आदिक हैं ऐसा ज्ञान बन गया पर पट आदिकके कारण प्रदीपमें तो ज्ञान नही बनता कि यह दीपक है, इसी तरह समझना चाहिए कि विशेषोंके कारण तो परमाणु आदिकमें विशिष्ट प्रत्यय हो जाता है यह उससे विलक्षण है ऐसा बोध हो जाता है, पर परमाणु आदिकके कारण विशेष धर्मका बोध नही होता। इससे विशेष नामका पदार्थ वास्तविक पदार्थ है ! विशेष पदार्थके कारण परमाणुओंमें व्यावृत्त बुद्धि हो जाती है।

वैलक्षण्यकी स्वतः परतःकी शंकाका समाधान—समाधानमें कहते है कि यह सब कथन असंगत है। अमेध्य अपवित्र जो मल आदिक अशुचि पदार्थ हैं उनके संसर्गसे लड्डू आदिक अपवित्र हो मरण गये। ही गिर गया मलपर तो लड्डूमें जो अपवित्रता आयी वह मलके सम्बन्धसे आयी और मलमें जो अपवित्रता थी वह अपने आप थी। ऐसा जो शंकाकार लोग तुम कहते हो सो बात यह है कि मल आदिक अशुचि द्रव्योंके सम्बन्धसे मोदक पदार्थ जो अशुचि हो गए तो हुआ क्या वहाँ कि पहिलेका जो पवित्र स्वभावपर वह च्युत हो गया और अब अशुचि रूपसे परिणत अन्य ही मोदक उत्पन्न हुआ है। मोदक तो वही है लेकिन पहिले शुचिरूपतासे सम्बंधित था अब अशुचिरूपतासे सम्बन्धित है। तो जैसे आत्माओंमें यह कहा जाता कि पहिले यह आत्मा पशु था, अब मनुष्य हुआ है तो अब यह नया जीव हुआ है। मनुष्यत्व अवस्थासे सम्पन्न जीवको इस ही निगाहमें नया कह सकते हैं। तो प्राक् अशुचि स्वभावको छोड़ते हुये ही अब मोदक आदिक भाव अशुचि रूपतासे अन्य ही

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्पन्न हो रहे हैं। इस प्रकार वैशेषिकवादियोंने माना भी है। वहाँ तो यह बात युक्त हो जायगी कि ये लड्डू आदिक पदार्थ अन्यके सम्बन्धसे अपवित्र हो जाते हैं। लेकिन यह बात परमाणुवोंमें तो न चलेगी क्योंकि परमाणु तो नित्य ही है। लड्डू आदिक तो अनित्य थे। लेकिन परमाणु जब नित्य हैं तो उनमें यह बात नहीं चल सकती कि पहिले जो अपवित्र रूपता थी विशेष पदार्थके सम्बन्धसे विविक्तता ही तो बतला रहे हो, तो पहिले क्या थी अविविक्तता? तो पहिलेके अभेद एक रूपताका त्याग करके अब नये विविक्तरूपतासे परमाणु उत्पन्न हो जाय यह बात तो नहीं बन सकती नित्यमें। तो नित्य अपरिणामी ही माना गया है विशेषवादमें इससे अमेध्यका दृष्टान्त देकर बाधा देना युक्त नहीं है। दूसरा दृष्टान्त दिया था दीपकका। वह दृष्टान्त भी इस ही कारण असंगत है कि परमाणु नित्य है और नित्य परमाणुवोंमें यह नहीं बन सकता कि पहिली अविविक्तताका त्याग करदें और अब नई विविक्त रूपताको अंगीकार करलें। पट आदिकमें तो यह हो रहा है कि जब दीपक आदिक अन्य पदार्थकी उपाधि आ गई तो प्रदीप आदिक पदार्थान्तरकी उपाधिरूप रूपान्तरकी उत्पत्ति हो गयी। अंधेरा भी पुद्गल द्रव्यकी पर्याय है और प्रकाश भी पुद्गल द्रव्यकी पर्याय है। वहां परिवर्तन हो गया लेकिन नित्य परमाणुवोंमें तो यह परिवर्तन असम्भव है। इस कारण यह नहीं कह सकते कि विशेषोंसे परमाणुवोंमें भी विविक्तता आती है। परमाणुवोंमें विशेषोंमें नहीं आती। नित्य परमाणुवोंमें किसी भी प्रकारका परिवर्तन सम्भव नहीं है।

अनुमान प्रमाणसे विशेषनामक पदार्थके सद्भावका बाधितपना— विशेष नामक पदार्थके सद्भावका मानना अनुमान प्रमाणसे बाधित भी है। वह अनुमान यह है कि इन सब पदार्थोंमें जो वैलक्षण्य प्रत्यय हो रहा है, यह इससे जुदा है इस प्रकारकी विलक्षणताका जो इन पदार्थोंमें ज्ञान हो रहा है वह इन पदार्थोंसे व्यतिरिक्त किसी विशेष पदार्थके कारण नहीं है, क्योंकि व्यावृत्त प्रत्यय होनेसे, यह इससे जुदा है इस प्रकारकी जुदाई वाला ज्ञान होनेसे। जैसे कि विशेष धर्मोंमें जो जुदाई वाला ज्ञान होता है कि यह विशेषसे न्यारा है, जैसे कि आत्माका विशेष धर्म पृथ्वीके विशेष धर्मसे जुदा है कि नहीं? जुदा है। तो उन विशेषोंमें जुदायगी ज्ञान करानेका कारण क्या है? वही विशेष धर्म। उसके लिए अन्य विशेष पदार्थ नहीं माना गया है। तो इसी प्रकार इन पदार्थोंमें भी आत्मासे पृथ्वी जुदा है आदिक जो वैलक्षण्य ज्ञान होता है वे ज्ञान भी अन्य विशेष पदार्थ के कारण पूर्वक नहीं होते। यहाँ यह बात बताई गई है कि जैसे पृथ्वी और जल दो पदार्थ हैं। और उन दो पदार्थोंमें भिन्नताका ज्ञान हो रहा है, पृथ्वीमें विशेष धर्म है, जलमें विशेष धर्म है, तो उन विशेष धर्मोंके कारण जुदेपनका ज्ञान हो रहा है सो उन दो पदार्थोंमें जो विलक्षणताका ज्ञान हो रहा सो उन दोनों पदार्थोंके ही धर्मके कारण हो रहा, कहीं अन्य विशेष नामक पदार्थ हो और उसके कारण पृथ्वी, जलमें भिन्नताका ज्ञान हो ऐसी बात नहीं है, क्योंकि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जितने भी भिन्नताके ज्ञान होते हैं वे सब उन्हीं अंशभूत पदार्थोंके कारण ही होते हैं। जैसे पृथ्वीका विशेष धर्म और जलका विशेष धर्म, इन दोनों विशेष धर्मोंसे भिन्नता है ना ? है। तो उन भिन्नताओंको बताने वाला कौन सा कारण है ? कोई अन्य विशेष पदार्थ नहीं है। यदि अन्य विशेष पदार्थ मानते हैं तो उसमें अनवस्था दोष आता है। फिर उस द्वितीय विशेष पदार्थमें और इसमें भिन्नताका ज्ञान करानेका कारण फिर तीसरा विशेष पदार्थ मानो। तो जैसे ! विशेष विशेषोंमें परस्पर भिन्नताका ज्ञान स्वयं हो जाता है इसी प्रकार इन सब पदार्थोंमें भी भिन्नताका ज्ञान इन्हीं पदार्थोंके स्वरूपके कारण हो जाता है तब विशेष पदार्थका मानना युक्तिसंगत न रहा. क्योंकि प्रथम तो विशेष पदार्थके सद्भावको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नहीं है और कभी कोई प्रमाण देगा तो उसमें बाधक प्रमाण है इस कारण विशेष नामक पदार्थ जैसे विशेषवादमें माना गया है वह सिद्ध नहीं होता। इस प्रकार द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष इन ५ पदार्थोंकी मीमांसा हुई।

समवायनामक पदार्थकी मीमांसाका स्थल—अब छठवां पदार्थ विशेषवादमें माना गया है समवाय नामक। उसकी मीमांसा चलगी। समवाय माननेकी चलेगी। समवाय माननेकी कोई खास जरूरत नहीं हो रही थी लेकिन जब विशेषवादमें एक ही पदार्थमें रहने वाली बातोंको भिन्न भिन्न पदार्थ रूपमें मान लिया तब सम्बन्ध जुटानेको समवाय मानना पडा। वैसे हैं सब प्रत्येक अद्वैत द्रव्य, उस हीकी अभिन्न शक्तिका नाम गुण है। द्रव्यके गुणोंकी परिणति व द्रव्यके प्रदेशकी परिणति का नाम है कर्म। द्रव्यमें जो धर्म सामान्यरूप है, जो अन्य पदार्थमें मिल जाय वह कहलाता है सामान्य। द्रव्यके ऐसे धर्म जो अन्य द्रव्योंमें न मिलें उन्हें कहते हैं विशेष धर्म। तो यों एक ही वस्तुमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष रहते हैं। वस्तु ऐसे ऐसे असंख्य अनन्त हैं तो उनका गुण कर्म सामान्य विशेष उनमें हैं। लेकिन जब बुद्धि भेदसे इन सबको भिन्न भिन्न मान डाला और ऐसा मान लेना सस्ता यों पड़ गया क्योंकि बुद्धिमें जच रहा था कि इनका स्वरूप कुछ विलक्षण समझमें आ रहा है सो अभिन्न तत्त्वोंको भिन्न तो मान डाला लेकिन भिन्न माननेके बाद अब यह आपत्ति और कठिन आती कि इनको एकमें कैसे सिद्ध करें ? जब ये पांचों पदार्थ भिन्न भिन्न हो गए और उन्हें पदार्थके नामसे कह दिया तब यह कठिनाई आना प्राकृतिक है कि आत्मामें ही ज्ञानको फिट किया जाय। पृथ्वीमें ही रूप, रस, गंधको फिट किया जाय, अन्यमें न किया जाय। इस व्यवस्थाका कोई समाधान नहीं था, उसके लिये समवाय सम्बन्ध मानना आवश्यक हुआ। और उससे व्यवस्था बनायी जाना उचित समझा है जिससे कि सामान्य विशेषात्मक पदार्थके विरोधमें जो प्रस्ताव कर डाला एक बार, अन्त तक न निभाव होते हुए भी अपने आपके मुखसे नहीं निभाव हुआ यह तो नहीं कहा जा सकता। इसके लिये समवाय नामक पदार्थकी कल्पना करनी पड़ी। अब उस ही समवाय पदार्थके सम्बन्धमें चर्चा चलेगी।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समवायनामक पदार्थकी अप्रतीति—वैसे तो समवाय नामक पदार्थ कुछ है नहीं यह तो लोगोंको साफ विदित हो रहा, क्योंकि न कोई समवाय नामक पदार्थ आता जाता दिखता है, न उसका कोई प्रयोग अर्थ क्रिया कुछ बात होती है और न उसका कोई निर्दोष स्वरूप भी विदित होता है। निर्दोष स्वरूप न होनेके कारण समवाय दो पदार्थोंका सिद्ध नहीं होता, न उसका प्रत्यक्षसे ज्ञान होता, न अनुमान आदिसे ज्ञान होता है। एक सीधी साफ निगाहसे ये सब द्रव्य हैं और वे अपना-अपना स्वरूप रखते हैं एव उनके ही स्वरूपमें यह बात पड़ी है कि वे प्रति समय अपना-अपना परिणमन कर रहे हैं,बस इन्हीं विशेषताओंके कारण पदार्थमें वे सब तत्त्व घटित हो जाते हैं और फिर पदार्थोंकी संख्या द्रव्यकी रह जाती है और शेष गुण कर्म सामान्य विशेष ये उस हीके धर्म बन जाते हैं उन धर्मोंसे अभिन्न वे पदार्थ है। अब उससे भिन्न कोई समवाय नामक पदार्थ हो ऐसा न कोई किसी प्रमाणसे सिद्ध है और न समवायका कोई निर्दोष लक्षण बनता है।

शंकाकार द्वारा समवाय नामक पदार्थके स्वरूप निर्देशन—यहांपर शंकाकार कहता है कि समवायका लक्षण है तो सही। समवायका लक्षण है अयुत सिद्ध आधार्य आधारभूत पदार्थोंमें इसमें यह है इस प्रकारके ज्ञानका कारणभूत जो भी सम्बन्ध है उस सम्बन्धका नाम है समवाय। इस लक्षणका तात्पर्य यह हुआ कि जब ऐसे पदार्थका सम्बन्ध बताना हो कि जिसमें यह ज्ञान हो रहा हो कि इसमें यह है आत्मामें ज्ञान है पृथ्वीमें गंध है, आदि रूपसे इनमें यह है यह ज्ञान हो रहा हो यदि न्यारे न्यारे वे न हों दो। एक तो वह जिसके लिए 'इह' कहा जा रहा है और एक वह जिसके लिए इदं' कहा जा रहा है जैसे आत्मामें ज्ञान। तो आत्मा और ज्ञान ये दोनों भिन्न सिद्ध पदार्थ न हों और आधार आधेयभूत हों? जैसे आत्मा आधार बना और बुद्धि आधेय बनी। तो यों जो अयुत सिद्ध पदार्थ हों, पृथक् पृथक पदार्थ न हों और उनका आपसमें आधार आधेय सम्बन्ध हो और इसमें यह है इस प्रकारका ज्ञान हो रहा हो तो ये तीन बातें रखकर यह समझना चाहिये कि इस प्रकारके ज्ञानका कारणभूत जो भी सम्बन्ध है वह समवाय सम्बन्ध है। तो समवायका यह निर्दोष लक्षण मौजूद है।

समवाय स्वरूपोक्त सम्बन्ध शब्दकी सार्थकताका प्रदर्शन—इस समवायके लक्षणकी निर्दोषता भी तो देखिये कि किसी भी तरहसे दोषका अवसर इसमें नहीं आ पाता। जैसे कि कोई यह कहता है कि इस ग्राममें वृक्ष है इस ज्ञानमें भी तो यह है ज्ञान हुआ ना। इस ग्राममें वृक्ष क्या पूरे फैलकर समवाय सम्बन्धसे रह रहे हैं? घने वृक्ष हैं। एक वृक्षके बाद और वृक्ष हैं। चलती जा रही हैं वृक्षकी पंक्तियाँ। अन्तराल बीचमें नहीं है। बहुत वृक्ष हैं उसके बीचमें दूसरा गाँव आ गया हो, इस तरहकी भी बात नहीं है। उस ही ग्राममें चलते जा रहे हैं वे 'पेड़' तो देखिये! ये

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इह, इदं प्रत्ययके कारण हो गए, लेकिन उनमें समवाय सम्बन्ध नहीं है तो ऐसी शंका उन्हें यों न करना चाहिए कि हमारे लक्षणमें तो सम्बन्ध शब्द पड़ा हुआ है । इस ग्राममें वृक्ष हैं यहां सम्बन्ध तो नहीं बन रहा किन्तु अन्तरालका अभाव सूचित हो रहा है। याने इन वृक्षोंके बीचमें कोई अंतराल नहीं है। वही वही गाँव बन रहा है तो अन्तरालका अभाव अभावरूप है। वह तो सम्बन्ध नहीं कहलाता है। इस कारण ग्राममें वृक्ष हैं इस प्रत्ययके साथ समवायका लक्षण व्यभिचरित नहीं होता।

समवाय स्वरूपोक्त आधार्याधारभूत शब्दकी सार्थकताका प्रदर्शन—समवायके लक्षणमें एक एक शब्दकी अविनाभावता तो तको कि कितना आवश्यक शब्द है जिससे समवायका लक्षण निदोष बन रहा है। कोई कहे कि इस आकाशमें पक्षी है ऐसा भी तो इह इदं ज्ञान हो रहा है, मगर आकाश और पक्षीका समवाय सम्बन्ध तो नहीं मानते। तो यह इदं प्रत्यय होनेपर भी समवाय नहीं माना जा रहा है तो यह लक्षण सदोष हो गया कि नही ? समवायका लक्षण यहाँ भी लग जाना चाहिये था। तो उसका उत्तर यह है कि हमारे समवायके लक्षणमें आधार आधेयभूत पदार्थोंका सम्बन्ध हो यह बात पड़ी हुई है। आकाश और पक्षीमें आधार आधेय सम्बन्ध नहीं है। कोई कहे—वाह आकाशमें ही तो पक्षी हैं। आधार आकाश है और पक्षी आधेय है तो उसका उत्तर यह है कि पक्षीका आधार आकाश है यह तुम कैसे कह रहे हो कि आकाश नीचे है और पक्षी ऊपर है ? आधार नीचे हुआ करता है। जैसे तखतपर चौकी है, तखत नीचे है, चौकी ऊपर है। आधार ऊपर नहीं होता। तो चूंकि पक्षीके नीचे आकाश है इसलिए तुम आधार कहते हो तो सोचो तो सही कि पक्षीके ऊपर भी तो आकाश है। फिर पक्षीमें आकाशका आधार आधेय सम्बन्ध नहीं कह सकते। इस कारण देखो ! हमारा लक्षण कितना निर्दोष है।

समवायस्वरूपोक्त अयुतसिद्ध शब्दकी सार्थकताका प्रदर्शन—कोई कहे कि यहां ऐसा भी तो ज्ञान हो रहा है कि इस मटकेमें दही है। इह इदं प्रत्यय हो रहा ना। और मटकेमें दही है यहां मटका और दही इन दोनोंका समवाय सम्बन्ध है नहीं, पर इह इदं प्रत्यय हो रहा है इसलिये जुट जाना चाहिए था समवाय सम्बन्ध मगर नहीं हो रहा है तो आपका हेतु व्यभिचरित हो गया। तो ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि हमारे लक्षणमें अयुतसिद्ध शब्द पड़ा है। जो अयुत सिद्ध हो, जुदे-जुदे पदार्थ न हैं। उनका सम्बन्ध है, उनका समवाय, लेकिन दही एक अलग पदार्थ है। मटका एक अलग पदार्थ है। उनमें अयुतसिद्धता नहीं है इस कारण समवाय सम्बन्ध नहीं बनता। जैसे सूत और कपड़ा है, ये अयुत सिद्ध हैं। सूतसे बाहर कपड़ा क्या ? इस तरहसे मटका और दही। ये अयुतसिद्ध चीज नहीं हैं। इनमें युतसिद्धपना है इस कारण इनके साथ भी व्यभिचारका दोष नहीं दे सकते हो। तब देखो ! हमारा लक्षण कितना निर्दोष है ?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समवाय स्वरूपोक्त अयुतसिद्ध शब्दकी शंकाकार द्वारा व्याख्या—अब अयुतसिद्धका अर्थ समझ लीजिए। युत सिद्ध कहते किसे हैं ? पृथक् आश्रयमें रहने का नाम है युतसिद्ध। जैसे दही और मटका। दही किसमें रहा रह है ? दही अपने अवयवोंमें रह रहा, मटकेमें नहीं। अगर दही मटकेमें हो तो कोई मटका ही खा ले, क्योंकि उसमें दही रखा है। दही है, दहीके अवयवोंमें, मटका है मटकाके अवयवोंमें। तो देखो, इन पदार्थोंका आश्रय पृथक् पृथक् है पृथक् आश्रयमें रहनेका नाम है युतसिद्ध और इसका नाम युतसिद्ध है कि पृथक् पृथक् गतिमान हो। जैसे दो बैल मिलकर एक गाड़ीको खींच रहे हैं तो क्या वे दो बैल अयुतसिद्ध हैं ? नहीं। जब उनकी गतिमत्ता पृथक् पृथक् पायी जा रही है, एक बैल अपनेमें चल रहा है, दूसरा बैल अपनेमें क्रिया कर रहा है, तो यों पृथक् पृथक् गतिमता होना इसे भी युतसिद्ध कहते हैं। तो देखो ! युतसिद्धके ये दो लक्षण हुए—पृथक आश्रयमें रहना और पृथक गति-मान होना। सो ये दोनों ही लक्षण ततु पट आदिकमें नहीं हैं। क्या तंतुवोंको छोड़-कर पट कोई अन्य जगह रह रहा है ? कपड़ा उन तंतुवोंमें ही तो है। तो ततु और पटमें युत सिद्धपना नहीं है। तो तंतु और पटकी तरह मटका और दही अयुतसिद्ध हो जायें इसे कोई नहीं मान सकता। तब देखो—हमारे समवायका लक्षण कितना निर्दोष लक्षण है कि जो अयुतसिद्ध और आधार आधेयभूत पदार्थोंमें इसमें यह है इस प्रकारके ज्ञानका कारणभूत सम्बन्ध हो उसे कहते हैं समवाय। तो समवायका लक्षण नहीं है कुछ यह कैसे कह दिया ? समवायका लक्षण है और वह वास्तविक पदार्थ है।

समवायस्वरूपोक्त अयुतसिद्ध शब्दके अर्थके अनिर्णयसे समवायस्वरूप की असिद्धि—अब इसके समाधानमें कहते हैं कि यह जो कहा कि अयुतसिद्ध पदार्थ का जो सम्बन्ध है सो समवाय है, तो पहिले अयुतसिद्धका अर्थ ही तो निर्णीत कर लीजिये ! अयुतसिद्धपना क्या आप शास्त्रीय ले रहे हैं या लौकिक ? लौकिकके मायने तो यह है कि जैसे घड़ेमें पानी भरा तो वह अयुतसिद्ध है जुदी–जुदी जगहमें तो नहीं है और शास्त्रीय अयुतसिद्धका मतलब यह है कि उसके बारेमें जिस तरह शास्त्रोंमें वर्णन किया गया हो। तो अयुत सिद्धपना आप शास्त्रीय ले रहे हैं या लौकिक ? यदि कहो कि हम शास्त्रीय अयुतसिद्धकी बात कह रहे हैं तो सुनो। तंतु और पटमें भी शास्त्रीय अयुतपना सम्भव नहीं हो सकता। देखो वैशेषिक शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है यह बात कि अयुतसिद्ध उसे कहते हैं जो अपृथक आश्रयमें रहनेकी वृत्ति हो याने जिन दो का सम्बन्ध बताया जा रहा है—जैसे सूत और कपड़ा। इन दोनोंका आश्रय एक होना चाहिए। तब तो अपृथक् आश्रयमें रहना कहलायेगा और अयुतसिद्ध कहलायेगा, किन्तु यह बात यहाँ नहीं है वैशेषिक शास्त्रोंके अनुसार। विशेषवादका मंतव्य है कि तंतु तो रहते हैं अपने अवयवोंमें। जो तंतुके अवयव हैं एक कपास कण रूप, उनमें तो रहते हैं तंतु, और पट रहता है तंतुवोंमें तो अब देखो ! आश्रय एक न रहा। कपड़ा रहा तनुवोंमें और ततु रहा अपने अवयव कपास कणोंमें। तो पृथक् आश्रय तो तब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बनता कि कपड़ा जहाँ रहता वहाँ ही तंतु रहते। अब शास्त्रीय पद्धतिसे तो देखलो कि कि तंतु और पटका भी आश्रय एक न रह सका। तंतु और पटका आश्रय अब पृथक पृथक सिद्ध हो गया। पृथक आश्रयमें रह रहे हैं तंतु और पट, फिर अपृथक आश्रयमें रहनेकी बात तो असिद्ध हो गयी। तब तंतु और पटमें भी आप समवाय सम्बन्ध नहीं कह सकते, न अयुक्त सिद्धका अर्थ लगा सकते हो। इसी प्रकार गुण, कर्म, सामान्य इन तीनमें भी अपृथक् आश्रय वृत्तिपना नहीं है। कैसे ? गुण रहता है गुणवानमें और गुणवान रह रहा है अपने अवयवोंमें तो तब आश्रय कहाँ रहा ? इसी तरह कर्म रहते हैं कर्मवानमें, कर्मवान रह रहा है अपने अवयवोंमें। सामान्य रहता है सामान्यवानमें, सामान्यवान रहता है अपने अवयवोंमें, तो इसमें भी अयुक्त सिद्धपना न बन सकेगा। तो तुम्हारा समवाय भी सिद्ध न होगा। और,यदि लौकिक अर्थकी बात कहते हो—जैसे कि एक घड़ेमें पानी भरा सो इसलिए अयुतसिद्ध कहते हो तो दूध और जल भी जब एक जगह हों तो उन्हें तो युतसिद्ध माना है लोकमें भी। तो उनमें भी अयुक्तसिद्धपना बन जायगा इस कारण अयुतसिद्धका अर्थ ही व्यवस्थित न हो सका फिर समवायका लक्षण कैसे घटित होगा।

पृथगाश्रयाश्रयित्वके निरूपणसे तन्तु पटमें समवायकी असिद्धिके निराकरणका शंकाकारका प्रयास—शंकाकार कहता है कि जैसे मटका और दधि के अवयव नाहाक दोनों आश्रय पृथक् भूत हैं और उन दोनोंमें याने मटका और दहीके अवयवोंमें मटका और दहीकी वृत्ति हैं उस तरह तंतु और पटमें ४ अर्थ नहीं हैं। इस कथनका तात्पर्य यह है कि जैसे कहते कि मटकामें दही है तो यहां मटकाका आश्रय है मटकाके अवयव और उन अवयवोंमें आश्रयी है मटकाके अवयव और उन अवयवोंमें आश्रयी है मटका। दो ये पृथक चीजें हो गयीं ना और दहीका आश्रय है दहीके अवयय और दहीके अवयवोंमें आश्रय है, दही। तो दो चीजें ये न्यारी हो गयी। तो जैसे ये चार चीजें है - इस तरह सूत और कपड़ेमें ये चार चीजें नहीं हैं। सूतके अवयवोंमें आश्रयी है सूत। ये दो बातें न मिलेंगी। कपड़ाको यही कहेंगे कि कपड़ा रहता है सूतोंमें। सूत को छोड़कर कपड़ाका आश्रय अन्य कुछ नहीं बताया जा सकता। तो यहाँ अब तीन ही चीजें रह गयीं। कपड़ा है सूतमें। सूत है अपने अवयवोंमें। तो तीन हो बातें हैं और मटका दधिके आधार आधेयभूतमें ४ बातें हैं। दधि है और वह है अपने अवयवों में। मटका है और वह है अपने अवयवोंमें। दो आश्रय पृथक्भूत हैं और दो आश्रयी पृथक्भूत हैं। इस तरह सूत और कपड़ामें बात नहीं जमती। यहां तो तंतु ही अपने अवयवोंके आश्रयी हैं और तंतु ही पटके आश्रय हैं। तब यहां तीन ही अर्थोंकी प्रसिद्धि होनेसे, समवाय होनेसे, अब युत सिद्धिका जो यह लक्षण किया गया है कि जो पृथक आश्रयोंसे आश्रयी बन कर हो उसे युतसिद्ध कहते हैं। तो अब यह युत सिद्धका लक्षण याने पृथक भावका लक्षण सूत और कपड़ामें नहीं घटता कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चित मान लो कि क्योंकि सूत और कपड़ा इन दोनों पृथक आश्रय नहीं है इसलिये तंतु और पटमें अयुत सिद्धपना बराबर सही है और यों समवायका लक्षण व्यभिचरित न हुआ। याने दधिकुण्डमें इस कुण्डमें दधि है ऐसा कहकर समवायको व्यभिचरित न कहा जा सकेगा कि देखो यहां भी इह इदं प्रत्यय हुआ, लेकिन समवाय न रहा। समवाय कैसे रहेगा? दधिकुण्डमें, तो युतसिद्ध है आधार आधेय और तंतु पटमें युत-सिद्ध है नहीं सो तंतु पटमें समवाय सम्बन्ध बन जायगा।

पृथगाश्रयाश्रायित्वसे युतसिद्ध करनेपर आकाशादिकमें युतसिद्धत्व सिद्ध करनेके अनवकाशका प्रसंग—अब इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि दो पृथक् आश्रय और आश्रयी बताकर दधिकुण्डसे व्यभिचार बचा किया समवायके लक्षण का लेकिन यहाँ बतलावो! आकाश आदिककी युतसिद्धि कैसे सिद्ध हो? क्योंकि आकाश, आत्मा, दिशा, काल ये तो निरवयव माने गए हैं विशेषवादमें। इसके अश प्रदेश नहीं होते। तो अब आकाश आदिकका युतसिद्ध किसमें बताओगे? कहां रहते हैं ये? इनका अन्य आश्रय तो कुछ है नहीं। और, जब अन्य आश्रय नहीं है तो पृथक आश्रय और आश्रयी भाव बताया ही नहीं जा सकता। रहा ही नहीं है। जब इसमें युतसिद्धका लक्षण घटित न होगा तब समवाय सम्बन्ध बन बैठेगा। जैसे दधि-कुण्डमें तो यह कह रखा था कि कुण्डका आश्रय है कुण्डके अवयव। दधिके आश्रय हैं कुण्डके अवयव। दधिके आश्रय हैं दधिका अवयव। अब यहां आत्माका आश्रय क्या है? आत्मामें तो अवयव माना नहीं गया। आत्माको तो निरवयव सर्वव्यापक माना है। ऐसे ही आकाश दिशा कालको भी निरवयव सर्वव्यापक माना है। तब वहाँ युत सिद्धका लक्षण घटित होगा नहीं सो अयुतसिद्ध कहलायेगा और समवाय सम्बन्धकी बात इसपे कुछ है नहीं। तो युतसिद्धका लक्षण ही आपका नहीं बनता। और, भी सुनो! युतसिद्धका लक्षण घटित करनेके लिये शंकाकारने दो बातें कहीं थी कि जो पृथकाश्रयमें रहे सो युतसिद्ध व पृथकगतिमानपना जिसमें हो सो उसे पृथक सिद्ध बन जाना। तो अब पृथकाश्रय वृत्तिरूप लक्षण तो सही बन न सका।

नित्य पदार्थोंमें पृथग्गतिमत्त्वकी असिद्धि होनेसे युतसिद्धिकी असिद्धि—अब दूसरे लक्षणपर दृष्टिपात कर लीजिये पृथक् गतिमत्वको युतसिद्धत्व कहा है। सो नित्य पदार्थोंमें पृथक्गतिमत्व सिद्ध नहीं होता। शंकाकार चाहे कि पृथक आश्रय में रहने रूप लक्षण युतसिद्धका निराकृत हो गया तो अब पृथक्गतिमत्व लक्षण सही मानकर युतसिद्धका स्वरूप बना लेंगे, सो पृथक्गतिमत्व भी तो नहीं बनता। बत-लावो जो नित्य पदार्थ है और साथ ही वह व्यापक भी है, सो उन व्यापक द्रव्योंमेंसे कोई एक परमाणु गमन कर जाय तो अथवा उनमें दो एक साथ गमन करे तो उसमें गतिमत्त्वकी सम्भावना की जा सकती थी लेकिन नित्य और व्यापक द्रव्योंमें न तो कोई एक पृथक गमन कर सकता, क्योंकि वहाँ है ही कहाँ अनेक। सारा नित्य विभु द्रव्य निरंश माना है। और तब उनमेंसे दो भी पृथक गमन क्या करें। और, कदा-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उनमेंसे कोई अवयव गमनकर देता है या दो मिलकर भी पृथक गमन करते हैं आपका द्रव्य विभु न रहा। विभु पदार्थोंमें, व्यापक पदार्थोंमें गमनकी बात नहीं बन सकती जो पूरे लोकमें फैला हुआ है उस किसी एकमें गमन कहां बनेगा? और गमन हो रहा है तो स्पष्ट सिद्ध है कि वे पदार्थ विभु नहीं है। गमन तो उसे ही कहते हैं कि एक जगह छोड कर दूसरी जगहमें पहुंच जाना तो ऐसा करनेमें व्यापकता कहाँ रही? और इस कारण कि व्यापक तो माना ही है निश्चितजो अब पृथक्गतिमत्त्व लक्षण न बन सका।

समवाय पदार्थवादियोंके गुण कर्म सामान्य आदिमें परस्पर समवाय हो जानेका प्रसंग – अब एक अन्य आपत्ति और देखिये ! जब एक पदार्थमें न तो पृथक आश्रय रहा और न पृथकगतिमत्त्व रहा, तब फिर किसी एक द्रव्यमें जो विभु है आत्मा कहो, आकाश कहो, किसी एक द्रव्यके आश्रय रहने वाले गुण कर्म और सामान्यमें परस्पर पृथक आश्रयपना तो रहा नही। गुणका आश्रय कौन ? वही द्रव्य। कर्मका आश्रय, सामान्यका आश्रय ? वही द्रव्य। जब इनका कोई पृथक आश्रय रहा नही, और ये गुण, कर्म, सामान्य जो विभु द्रव्यके आश्रयभूत हैं उनमें पृथक आश्रयावृत्ति हो न सकी तो अयुतसिद्ध कहलाने लगे। जब अयुतसिद्धका प्रसंग आ गया तो इसका परस्परमें समवाय हो जाना चाहिए। पर समवाय तो नहीं माना गया, क्योंकि गुण, कर्म, सामान्य इनमें आश्रयके आश्रयीभाव नहीं हैं। तो देखा शंकाकारने समवायका लक्षण व्यवस्थित करनेके लिये दो कैद की थी कि एक तो होना चाहिये अयुत सिद्ध पदार्थ, दूसरा होना चाहिये आधार्य आधारभूत। तो उनमें समवाय सम्बन्ध बने। लेकिन प्रथम तो युतसिद्धका लक्षण न बन सका, युतसिद्धका लक्षण न बना तो किसका अभाव करके अब अयुतसिद्धपना बताओगे ? तथा आधार आधेयभाव भी नाना प्रकारमें होते हैं पृथक सिद्धमें भी होते हैं, अपृथक सिद्धमें भी होते हैं तो पहिली बात तो यह है कि अयुत सिद्ध और आधार आधेयभूत पदार्थ ही सिद्ध नहीं हो पाते, तो समवाय लक्षण कहा घटावोगे ?

सविशेषण भी समवायके लक्षणमें दोषापत्ति—कदाचित् मानलो कि दोनों बातें हैं-अयुतसिद्ध भी है और आधार्य आधारभूत भी है तो भी आपका यह नियम न बन सकेगा कि अयुतसिद्ध और आधार्य आधारभूतमें समवाय सम्बन्ध होता ही है। देखो ! यह जब ज्ञान किया जाता है कि इस आकाश वाच्यमें आकाश शब्द वाचक लगता है, लोक व्यवहारमें कहते भी हैं कि इस वाच्यमें यह वाचक शब्द फिट बैठता है। तो लो आकाश वाच्यमें आकाश शब्द वाचक रहा तो यह कौन सा सम्बन्ध हुआ। यह तो वाच्य वाचक भावरूप सम्बन्ध है और जिसमें वाच्य वाचक भाव सम्बन्ध बताया जा रहा है वह है अयुतसिद्ध और आधार्य आधारभूत। तो अयुतसिद्ध और आधार्य आधारभूत होकर भी आकाश वाच्य और आकाश शब्द वाचकमें समवाय सम्बन्ध नही रहा किन्तु वाच्य वाचक सम्बन्ध है, और भी सुनो ? जैसे यह ज्ञान बना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि इस आत्मामें ज्ञान है, तो आत्मा और ज्ञानमें विषय विषयी भाव सम्बन्ध है । तो अयुतसिद्ध होकर भी आधार्य आधारभूत होकर भी आत्मा और ज्ञानमें समवाय सम्बंध होनेके बजाय विषय विषयी भाव सम्बन्ध है । तो आपका समवाय लक्षण तो सुघटित नहीं हो सक रहा ना और, भी तीसरी बात सुनो, कि यहाँ इतरेतराश्रय दोष भी आ रहा है । इस झमेलेमें समवायकी सिद्धि तो हो नहीं रही क्योंकि जब युत सिद्धि सिद्ध हो जाय तब तो युत सिद्धिका निषेध करके अयुत सिद्धमें तुम समवाय सम्बन्ध बना पावोगे और जब समवाय सम्बन्ध सिद्ध हो जायगा तब यह सिद्ध होगा कि जो पृथकाश्रयमें समवायी रहे वह युतसिद्ध कहलाता है । तो समवायकी सिद्धि होनेपर पृथगाश्रय में समवायी रूप वृत्तिको युतसिद्धि सिद्ध कर सकोगे । और, जब युतसिद्धिका स्वरूप सिद्ध हो जाय तो युतसिद्धिको निषेध द्वारा फिर युतसिद्धिमें समवाय सम्बन्ध बता सकोगे, तो इसमें इतरेतराश्रय दोष भी आता है ।

समवायलक्षणमें प्राप्त दोषापत्तिके निवारणका विफल प्रयास—शंकाकार कहता है कि हम समवायके लक्षणमें दोनों विशेषणोंमें एवकार का आश्रय कर रहे हैं याने अयुतसिद्धमें ही और आधार्य आधारभूतमें ही समवाय सम्बंध होता है, हम इस तरहका एवकार लगा रहे हैं और कभी अयुतसिद्धमें या युतसिद्धमें अथवा युतसिद्ध होकर भी आधार आधेयभूतमें यदि विषय विषयी सम्बन्ध जोड़ा जाय या वाच्य वाचकमें वाच्यवाचक भाव सम्बन्ध लग जाय तो लगे, हमने तो समवायका लक्षण उनमें एवकार विशेषणोंके साथ लगाया है और साथ ही इतरेतराश्रय दोषकी भी बात नहीं बनती, क्योंकि लक्षणका प्रयोजन तो यह है कि विद्यमान अर्थको अन्य पदार्थोंसे, भिन्न रूपसे बताकर रख दे, पदार्थके सद्भावको सिद्ध करे,यह लक्षणका काम नहीं तो यह है कि अलक्ष्य पदार्थोंसे भिन्न करके रख देवे तब इतरेतराश्रय दोष क्यों आयगा कि अमुक सिद्ध हो तो अमुक सिद्ध हो । सद्भाव कारक हम लक्षण ही नहीं मानते अब इसके समाधानमें कहते हैं कि देखो ! तुम्हारा है यह ज्ञापक पक्ष, याने कुछ सिद्ध करना है. जताना है, ज्ञान कराना है तो ज्ञापक पक्षमें तो इतरेतराश्रय दोष अच्छी प्रकारसे लगता है । देखो अज्ञात युतसिद्धसे समवाय कभी नहीं जाना जा सकता । जब तक युतसिद्धका लक्षण पूर्णतया न जान लोगे, न समझा सकोगे तब तक समवायका ज्ञान नहीं किया जा सकता और जब समवाय न जाना गया तो युतसिद्धिकी भी व्यवस्था नहीं बनायी जा सकती है , इस कारण इतरेतराश्रय दोष तो इसमें अवश्य ही है । और, फिर इस लक्षणसे समवायसिद्ध हो नहीं सकता। जैसे कि बताया है कि आकाश वाच्यमें आकाश शब्द वाचक है, इस वाच्य वाचक भावमें तुम्हारा अयुत सिद्ध सम्बन्धत्व और आधार आधेयभूत सम्बन्ध पाये जा रहे हैं और सम्बन्ध है वाच्य वाचक भाव समवाय नहीं, इसी प्रकार विषय भूत आत्मामें यह मैं ज्ञान विषयी हूँ इस प्रकारके विषयी भावमें भी अयुतसिद्धता भी है और आधार आधेयपना भी है । इससे समवाय का लक्षण तो व्यभिचरित हो गया ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समवायके लक्षणमें व्यभिचारनिवृत्तिकी शंका व उसका समाधान— शंकाकार कहता है कि इसमें व्यभिचार दोष नहीं दिया जा सकता। क्योंकि जितने भी वाच्य वाचक वर्ग हैं सबमें और जितने विषय विषयी वर्ग हैं उनमें नियमसे अयुत सम्बन्धपना नहीं है, याने युतसिद्ध पदार्थोंमें भी वाच्य वाचक भाव बन सकता है और विषय विषयी भाव बन सकता है, इस कारण दोष नहीं आता। समाधानमें कहते हैं कि वर्षकी अपेक्षा भी हिसाब लगाओ। तो मानलो सब जगह विषय विषयी भाव, वाच्य वाचकभाव अयुतसिद्धमें न मिले, कुछ जगह मिले तो विपक्षके एक देशमें लक्षणके रहनेको भी व्यभिचार दोष कहते हैं, और जब विपक्षके एक देशसे लक्षण न हट सका तो उसको तो सबके साथ अनेकान्तिक दोष कह सकते हैं। यों समवायका लक्षण भी आपका सिद्ध नहीं हो सकता। विशेषवादियोंने समवायका जो लक्षण कहा है कि अयुतसिद्ध आधार्य आधारभूत पदार्थोंमें इसमें यह है इस प्रकारके ज्ञानका कारणभूत जो सम्बन्ध है उसे समवाय कहते हैं। तो इसमें जो दो विशेषण दिए गए हैं समवाय पदार्थ सम्बन्धित कि अयुतसिद्ध और आधार्य आधारभूत तो इनमेंसे एक ही विशेषण कहते कि अयुतसिद्धके ही समवाय सम्बन्ध होता है तो इतनेसे ही काम चल जाता, फिर आधारआधेयभूतानाम् यह विशेषण देनेकी क्या जरूरत रही और या आधाराधेयभूतानाम् इतना विशेषण रखते, यही अवधारण करते तब अयुतसिद्धानाम् यह शब्द देनेकी कुछ जरूरत ही न रहती। फिर एक लक्षणको व्यर्थ ही इतना बढ़ावा देना और अनर्थक शब्द रखना इसमें कौन सी शास्त्रीय विशेषता जाहिर होती है?

शंकाकार द्वारा समवायके लक्षणके दोनों विशेषणोंके अवधारणकी सार्थकताका प्रतिपादन— शंकाकार कहता है कि समवायके लक्षणमें इन दो विशेषणोंमेंसे यदि एक विशेषण न देते तो उसमें आपत्ति आ रही थी। जैसे कि हम केवल यही कहते कि अयुतसिद्ध पदार्थोंमें इसमें यह है इस ज्ञानका कारणभूत जो सम्बन्ध है उसे समवाय कहते हैं तो अब देखिये! रूप, रस, ये अयुतसिद्ध हैं कि नहीं? एक द्रव्य में समवेत रूप, रस, गुण, है अर्थात् रूप पदार्थ जिस द्रव्यमें समवेत है उस ही द्रव्यमें रस, गुण, पदार्थ भी समवेत है। तो रूप, रस, आदिकका समवायी आश्रय एक होनेके कारण रूप, रस, आदिक अयुतसिद्ध हो गए और वैसे ही व्यवहारतः देखलो। आमके फलमें रूप और रस एक ही जगह अपृथक् रूपसे हैं कि नहीं? ऐसा तो है नहीं कि रूप किसी जगह हो, रस किसी जगह हो तो रूप, रस आदिक अयुतसिद्ध हैं। अयुत सिद्धके समवाय होता है, इतना मात्र कहनेसे इसमें भी समवाय सम्बन्ध बन बैठता। तो एकार्थ में समवाय सम्बन्ध वाले पदार्थोंमें समवायपना न पहुँच जाय उसकी निवृत्तिके लिए दूसरे विशेषणमें भी एकाकार लगाया है कि जो अयुतसिद्ध हो सो तो ठीक है, होना ही चाहिए पर आधारभूत भी हो तो उनमें सम्बन्ध जो हो उसे समवाय कहते हैं। यह समवाय वाच्य वाचक भाव आदिककी तरह युतसिद्ध पदार्थोंमें भी सम्भव नहीं होता। जैसे कि वाच्य वाचक भावमें समवाय सम्बन्ध नहीं, किन्तु वाच्य वाचक भावरूप सम्बंध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है इसी प्रकार विषय विषयी भावमें समवाय सम्बन्ध नही किन्तु विषय विषयी भाव सम्बन्ध है। जैसे कि हमने घटको जाना तो घटज्ञान और घटके साथ कौन सा सम्बन्ध है ? समवाय तो है नही पृथक भिन्न-भिन्न युतसिद्ध दिख रहे हैं तो वहाँ कहा जायगा कि विषय विषयीभाव सम्बन्ध है। संयोग भी नही है। घट ज्ञान आत्मामें है। घट घटमें है। तो जैसे युतसिद्ध पदार्थोंमें समवाय सम्बन्ध सिद्ध नही होता ऐसे ही रूप, रस आदिकमें समवाय सम्बन्ध सिद्ध नही होता क्योंकि समवायके लक्षणमें आधार्य आधारभूत ये विशेषण भी दिए गए हैं। इसी तरह यदि केवल आधार्य आधारभूत पदार्थोंमें समवाय होता है, इतना ही कहा जाता तो जैसे कहा कि इस पर्वतमें वृक्ष हैं, तो आधार आधेय भाव तो बिल्कुल स्पष्ट हो गया। पर्वत आधार है और वृक्ष आधेय है तो आधार आधेयभूत पदार्थोंमें समवाय होता है इतना मात्र कहनेपर इस पर्वतमें वृक्ष हैं इसमें भी समवाय सम्बन्ध मानना पड़ता और जब अयुतसिद्धानाम् यह विशेषण दिया गया है तो यहां यह व्यभिचार नही आता, क्योंकि पर्वतमें वृक्ष है, वह समवाय सम्बन्धसे नही है। पर्वत भी द्रव्य है द्रव्योंका समवाय सम्बन्ध नही माना गया है किन्तु संयोग सम्बन्ध है, इस प्रकार दोनों विशेषण और दोनोंमें एकाकार शब्द देना पड़ा है।

समवायके लक्षणमें दोनों विशेषणके देनेपर भी अनैकान्तिक दोषका अनिवारण —अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि दोनों विशेषण, देनेपर भी अनैकान्तिक दोषकी निवृत्ति नही होती। देखो ! वाच्य वाचक भावमें और विषय विषयी भावमें अयुतसिद्धता और आधार आधेय भाव ये बन रहे हैं लेकिन समवाय कहाँ माना गया है। कभी किन्ही अयुतसिद्धोंमें समवाय मानले और किन्होंमें न मान ले, किन्ही आधार आधेयभूत पदार्थोंमें सम्बन्ध मान लिया जाय और किन्होंमें न माना जाय, यह तो अपने मनकी स्वच्छन्दताकी ही बात है। कोई नियम नही बना कि जिसके अनुसार जो बात नियममें कही हो उसे मान ही लिया जाता। तो यों समवाय सम्बन्धका लक्षण ही पहिले सही नही बैठता, और सही यों न बैठ सकेगा कि पदार्थ का जो स्वरूप है उस स्वरूपमें विपरीत कोई प्रस्ताव रखा जाय तो वह कहां पारित हो सकता है ? पदार्थ सब गुण पर्यायात्मक होते हैं और उन पदार्थोंमें ही पायी जाने वाली विशेषताको प्रतिपादनके अर्थ बताया जाता है तो वहाँ गुण, कर्म, सामान्य, विशेष अलग हैं कहां ? और, जब ये अलग हैं नही तो समवाय सम्बन्धकी कल्पनाकी भी जरूरत क्या रही ? यों पदार्थोंको अपने उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक गुणपर्यायात्मक, सामान्यविशेषात्मककी पद्धतिसे निरखो तो सर्व तत्त्वोंका, मर्मोंका स्पष्ट बोध होता जायगा। अन्यथा तो कल्पना भी सही न उतरेगी, अन्यथा अयुतसिद्धमें भी समवाय घटित नही होता व युतसिद्धके भी समवाय सम्बन्धका प्रसंग आ जायगा। यों अनेक आपत्तियाँ आ सकेंगी।

समवायके लक्षणको भेदक लक्षण कहकर शंकाकारका दोषसे बचाव—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शंकाकार कहता है कि समवाय सम्बन्धका जो हमने लक्षण किया है वह भेदक लक्षण है याने अन्य सम्बन्धोंसे इसे भिन्न करके बता देना ही इसका प्रयोजन है। यह है समवाय, तो भिन्नताको जाहिर कर देने मात्रका प्रयोजन है लक्षणका, सो यों अनेक उचित विशेषणों सहित और अन्य द्रव्यादिक पदार्थोंसे भेद करा देने वाला निर्दोष यह समवाय का लक्षण है और इसी कारण यह कहा जा सक रहा है कि तंतु पट आदिक सामान्य सामान्यवान गुण गुणी आदिक संयुक्त नही होते हैं, ऐसा समझना चाहिए क्योंकि ये नियमसे अयुतसिद्ध हैं और आधार आधेयभूत हैं। जो संयुक्त हुआ करते हैं वे अयुतसिद्ध और आधार आधेयभूत नही होते, याने जिनमें संयोग सम्बन्ध पाया जाता है उनमें ये दो विशेषतायें नहीं हैं। आधार आधेयभूत तो कभी हो भी जाय संयोगी पदार्थोंमें भी लेकिन अयुत सिद्ध होकर फिर आधार आधेयभूत हो तो वहाँ संयोग नहीं पाया जा सकता है। जैसे मटकामें बेर रखे हैं ऐसा कोई व्यवहार करे तो यह संयुक्त होनेके कारण मटका और बेर अयुतसिद्ध पदार्थ नहीं है बिल्कुल पृथक भिन्न–भिन्न वे द्रव्य हैं। तो अयुतसिद्ध पदार्थ होनेके नाते तंतु पट आदिक संयुक्त नही है, किन्तु उनमें समवाय सम्बन्ध है। अथवा इस प्रकारसे भी प्रयोग कर लेवें कि तंतु पट आदिकका सम्बन्ध संयोग सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि ये नियमसे अयुतसिद्ध सम्बन्ध वाले हैं। जैसे ज्ञान और आत्माका सम्बन्ध, ये संयोग सम्बन्ध नहीं है, किन्तु विषय विषयी भाव सम्बन्ध है। अयुतसिद्ध है ना ज्ञान और आत्मा। तो उनके सम्बन्धमें जब ज्ञान किया जाता है कि इस आत्मामें यह मैं ज्ञान हूँ या इसमें यह ज्ञान विषयरूप है तो यहां संयोग सम्बन्ध न कहलायेगा विषयविषयीभाव सम्बन्ध है। अतः यह कहना कि तंतु पट आदिकमें भी समवाय सम्बन्ध न हो सकेगा यह कैसे युक्त है।

तादात्म्यसे बंधातिरिक्त स्वरूप सम्बन्धकी अनुपपत्ति अब उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि तंतु और पटके सम्बन्धमें संयोग सम्बन्धका निराकरण करनेके लिये इतना अधिक जो परिश्रम किया गया है वह व्यर्थ है। हम भी तंतु और पटमें कब संयोग सम्बन्ध कहते हैं? तंतु क्या कोई अलग द्रव्य है पट क्या कोई अलग द्रव्य है? यदि ये अलग अलग द्रव्य होते तो इनमें संयोग सम्बन्ध कहा जा सकता था किन्तु पट तो तंत्वात्मक ही है। तंतुवोंका ही उस प्रकारका साधन आश्लेष रूप परिणमन पट कहलाता है। पट तंतुवोंके अतिरिक्त और कोई चीज नहीं है। उनमें कथंचित् तादात्म्य सम्बन्ध माना गया है। समवाय सम्बन्ध तो कोई सम्बन्ध ही नहीं होता। जिसे शंकाकार समवाय सम्बन्ध कहता है उसका तादात्मक सम्बन्ध लक्षण बनता है? समवाय सम्बन्ध शब्दसे कहना शंकाकारको इसी कारण इष्ट हुआ है कि ताकि द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष ये सब स्वतन्त्र स्वतन्त्र पदार्थ सिद्ध होलें। यदि तादात्म्य सम्बन्ध शब्दसे कहते तो उसका अर्थ होता कि वह जिसका स्वरूप है उसको कहते हैं तादात्म्य। और तादात्माके भावको कहते हैं तादात्म्य तत एक आत्मा यस्य तदात्मा, तस्य भावः तादात्म्यम्। तो तादात्म्य शब्दके कहनेसे ६ प्रकारके परि-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कल्पित पदार्थोंकी संख्या नहीं बन पाती। अतएव समवाय सम्बन्ध शब्दमें कहना पड़ा है। लेकिन वहां तादात्म्य है जैसे कि गुण और गुणीमें। क्या कभी ऐसा भी हो सका, कि गुणके बिना गुणी ठहरा हो और गुणीके बिना गुण ठहरा हो। और फिर उनका सम्बन्ध हो तब वह गुण गुणी सही बने, ऐसा कभी नही हुआ। गुण गुणी कोई भिन्न पदार्थ है ही नहीं। एक ही पदार्थ है, उसकी हम विशेषताको जानते हैं तब वह गुण कहलाता है और जिसकी विशेषताको जान रहे वह गुणी कहलाता है। तो तंतु और पटमें भी तादात्म्य सम्बन्ध माना गया है। और इसी प्रकार गुण गुणीमें, सामान्य सामान्यवानमें, कर्म कर्मवानमें तादात्म्य सम्बन्ध माना गया है। समवाय सम्बन्धकी कल्पना करके अनेक दोष उपस्थित होते हैं। और भी बात सुनो! समवाय सम्बन्ध यदि किसी प्रमाणसे सिद्ध हो तब तो उसके बारेमें यह कहना युक्त हो सकता है कि यह समवाय सम्बन्ध संयोगसे कुछ विलक्षण है। अथवा जिसमें संयोग सम्बन्ध बना रहता है उनके सम्बन्धसे विलक्षणताको सिद्ध करने वाला समवाय सम्बन्ध बन जाता है यह कहना युक्त हो सकता है, किन्तु समवाय संबन्ध तो प्रमाणसे प्रसिद्ध है ही नहीं। अतएव समवाय नामक पदार्थ कोई सिद्ध नहीं है।

समवायकी प्रत्यक्षसे सिद्धिका पूर्वपक्ष और उसका निराकरण—शंकाकार कहता है कि समवाय सम्बन्धकी तो सिद्धि प्रत्यक्षसे ही हो रही है देखो ना, तंतुवोंमें सम्बद्ध जो पट है वह पट ही प्रतिभासमान हो रहा है प्रत्यक्षसे और उसमें जो रूपादिक हैं, जो पटमें सम्बद्ध हैं. तंतुवोंमें भी सम्बद्ध हैं वे सब भी प्रतिभासमान हो रहे हैं। अगर सम्बन्ध न होता तंतुवोंका और पटका तो विन्ध्याचल, हिमालय आदिक पर्वतोंकी तरह वियुक्त प्रतिभास होता। पर तंतु रूपात्मक हैं, पट भी रूपात्मक है और तंतु पटके साथ रूपका ऐसा घन सम्बन्ध होना यह क्या समवायको सिद्ध नहीं कर रहा? तो ऐसे समवायकी तो बराबर प्रत्यक्षसे प्रतीति हो रही। तो यह कैसे कहा जा सकता कि समवाय किसी भी प्रमाणसे प्रसिद्ध नहीं है। उसकी प्रत्यक्षसे प्रमाणसे सिद्धि हो रही है। समाधानमें कहते हैं कि यह कहना अयुक्त है कि समवाय प्रत्यक्षसे ही प्रतिभासमें आ रहा है। अरे असाधारण स्वरूपता सिद्ध होनेपर पदार्थों की प्रत्यक्षता सिद्ध हो सकती है। जैसे—घड़ेका आकार है प्रतिबुध्नउदर अर्थात् नीचे सकरा, बीचमें मोटा और अन्तमें भी सकरा तो जब घटका स्वरूप सिद्ध है, घटका आकार प्रत्यक्षसे सिद्ध हो रहा है तब ही तो हम घटकी सिद्धि कर लेते हैं। घट मौजूद है। तो जिसका असाधारण स्वरूप सिद्ध हो ले तब उसके बारेमें कहा जा सकता है कि प्रत्यक्षसे प्रतीति हो रही है लेकिन समवायमें असाधारण स्वरूप क्या है क्या? यही तो सिद्ध नहीं हो रहा। अगर समवायका कोई स्वरूप सिद्ध होना कहते हो तो यह बताओ कि वह स्वरूप क्या है? क्या अयुतसिद्ध सम्बन्धपनेका नाम समवाय है या संबन्ध मात्रका नाम समवाय है? समवायका क्या स्वरूप है? यदि कहो कि अयुतसिद्ध संबन्धपनेका नाम समवाय है और वही समवायका असाधारण स्वरूप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है तो यह बात गलत है। सभी लोगोंको ऐसा अयुत सिद्धपना प्रतीतिमें नहीं आ रहा। वह तो उसका स्वरूप ही है। उसमें समवाय सम्बन्धकी कल्पना करना व्यर्थ है। तो पहिले समवाय सम्बन्धके असाधारण स्वरूपको सिद्ध कीजिए। समवायका असाधारण स्वरूप सिद्ध होने पर फिर उसके बारेमें कहना कि उसको ही प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध करना है। विशिष्ट स्वरूप पहिले ज्ञानमें आये बिना किसी भी पदार्थका प्रत्यक्ष नहीं हुआ करता है। समवायका लक्षण यदि अयुतसिद्ध सम्बन्धपना होता तो यह स्वरूप सबके प्रतिभासमें आना चाहिये था। जो जिसका स्वरूप होता है वह उस स्वरूपसे सभी जीवोंमें प्रतिभासमें आया करता है। जैसे घटका स्वरूप प्रतिपुष्नउदराकार है अर्थात् नीचे सकरा, बीचमें मोटा और अन्तमें भी सकरा इस तरहके रूप हैं। तो उस रूपमें जब आकार प्रतिभासमान हो रहा तो घट भी प्रतिभासमें आ रहा है तो अयुतसिद्ध सम्बन्धपना यह असाधारण स्वरूप समवायका न बन सका।

सामान्यात्मकत्व व सम्बन्धमात्रत्वमें समवाय स्वरूपकी असिद्धि—यह भी नही कह सकते कि चलो समवायका सामान्यात्मक स्वरूप कहलायगा। यह क्यों नही कह सकते? यों कि सामान्यात्मक स्वरूप तो वही होगा जिसके समान कई पदार्थ होंगे। समवाय तो एक माना गया हैं और एकमें सामान्य क्या? समानमें होने वाले धर्मको सामान्य कहते हैं जब समान कोई पदार्थ ही न हुए यानें समवायकी तरह अन्य कोई पदार्थ है ही नही तो सामान्य भी नही रह सकता। जैसे—गगनमें गगनत्व। आकाश एक है अब वह गगनत्व क्या है, सामान्य? कुछ भी नही। तो अयुतसिद्ध सम्बन्धपना समवायका असाधारण स्वरूप नही बन सकता। यदि कहो कि सम्बन्ध मात्र समवायका असाधारण स्वरूप हो जायगा सो भी गलत है। सम्बन्ध मात्र तो संयोग आदिकमें भी है। विशेषण विशेषणी भाव, वाच्य वाचक भाव, विषय विषयी भाव, अनेक प्रकारके सम्बन्ध हैं तो सम्बन्ध मात्र तो सभी कहलाते हैं, फिर समवायका यह लक्षण नही बन सकता है।

समवायके प्रतिभासमानत्वकी पांच विकल्पोंमें पृच्छना—और, भी विचारिये यह समवाय सम्बन्ध जिसे प्रतिभासमान कहना चाह रहे हो, तो यह समवाय क्या सम्बन्ध बुद्धिमें तद्रूपसे प्रतिभासमान होता है या 'इह' इस प्रकारके ज्ञानमें समवाय प्रतिभास होता है या समवाय ऐसे अनुभवमें ही समवाय प्रतिभासमा हो जाता है। इस प्रकार तीन विकल्पोंमें समवायके प्रतिभासकी प्रच्छाकी गई है। यदि कहो कि सम्बन्ध बुद्धिमें यह समवाय तद्रूपतया प्रतिभासित हो जाता है तो वह सम्बन्ध क्या है जिसकी बुद्धिमें यह समवाय प्रतिभासित होता है? तब सम्बन्धका अर्थ बताओ, क्या सम्बन्धत्व जातिसे युक्तको कहते हैं या अनेक उपादानोंसे उत्पन्न हुएको सम्बन्ध कहते है, या वह सम्बन्ध अनेकके आश्रित होता है या सम्बन्ध बुद्धिको उत्पन्न करने वाला सम्बन्ध होता

http://sahjanandvarnishastra.org/

है, या सम्बन्ध बुद्धिके विषयको सम्बन्ध कहते हैं ? इस प्रकार सम्बन्धके स्वरूपके निर्धारण करनेके लिए ५ विकल्प किए गए हैं।

सम्बन्धत्व जातियुक्त, अनेकोपादानजनित, अनेकाश्रित व सम्बन्धबुद्धयुत्पादक इन विकल्पोंरूप सम्बन्धकी मीमांसा—सम्बन्ध स्वरूपके उक्त ५ विकल्पों में से यदि प्रथम विकल्प लोगे, याने सम्बन्धत्व जातिसे युक्तको सम्बन्ध कहते हैं तब तो समवायमें सम्बन्धपना न आ सकेगा, क्योंकि समवायमें जातिका सम्बन्ध नही हो सकता। द्रव्य, गुण, कर्म इन तीनमेंसे किसीका अभाव होनेपर और समवायान्तरका अभाव होनेसे सम्बन्धत्व जाति समवायमें नही लग सकती। जाति द्रव्य, गुण, कर्ममें लग सकती है। सो समवाय न द्रव्य है, न गुण है, न कर्म है। और, समवायान्तर भी नही बन सकता, अतएव सम्बन्धका लक्षण यह न किया जा सकेगा कि सम्बन्धत्व जातिसे जो युत हो सो सम्बन्ध है। यदि कहो कि संयोगकी तरह अनेक उपादानोंसे उत्पन्न होता है। जितने पदार्थोंका मेल होगा उस संयोगके उपादान कारण उतने कहलायेंगे ? जितने पदार्थ मिले। तो जैसे अनेक उपादानोंसे संयोग उत्पन्न होता है इसी प्रकार अनेक उपादानोंसे समवाय भी जनि होता है। उत्तर—तब तो घट आदिकमें भी समवायत्वका प्रसंग हो जायगा। क्योंकि देखो—घट भी अनेक उपादानोंसे उत्पन्न हुआ है। घटके कण मिट्टीके कितने थे जिन मिट्टी अवयवोंसे घड़ेकी उत्पत्ति हुई है। यदि कहो कि समवाय अनेकाश्रित होता है सो यह भी नही कहा जा सकटा, क्योंकि घटत्व आदिकमें सम्बन्धपना लग जायगा। देखिये ! घट घटत्व और उसमें घटत्व जाति है, तो अनेक हो गए। घट और घटत्व। सम्बन्ध बुद्धिका जो उत्पादक हो उसे संबन्ध कहते हैं यह विकल्प भी युक्त नहीं है। सम्बन्ध बुद्धिके उत्पादकको संबंध मान लेनेपर फिर तो नेत्रादिकमें भी संबन्धपनेका प्रसंग हो जायगा। क्योंकि नेत्रादिक भी वस्तुमें संबन्धबुद्धिको उत्पन्न किया करते हैं। और, सम्बन्धबुद्धिको उत्पन्न करने वालेका नाम रखा है सम्बन्ध। तो इस प्रकारका सम्बन्धपना नेत्र, प्रकाश आदिक अनेक पदार्थोंमें बन बैठेगा अतः सम्बन्ध बुद्धिके उत्पादकको सम्बन्ध कहते हैं यह भी बात युक्त नहीं बैठती।

सम्बन्धके सम्बन्धबुद्धिविषयत्व लक्षणका निराकरण अन्तिम विकल्प यदि कहोगे कि सम्बन्ध बुद्धिका जो विषयभूत है उसे सम्बन्ध कहते हैं। तो सम्बन्ध और सम्बन्धी जब ये दोनों एक ज्ञानके विषय बन गए तो सम्बन्धबुद्धिका विषयभूत सम्बन्ध ही क्यों कहा जाय ? सम्बन्धीको क्यों न कह दिया जाय। सम्बन्धबुद्धिके विषयभूत क्या है और किस स्थितिमें सम्बन्धकी बुद्धि बनी है, वहां दो ही तो तत्त्व रहे—सम्बन्ध और संबन्धी। अब सम्बन्धबुद्धिका विषय रूप हेतुको संबन्धको तो ग्रहण कर लिया और संबंधीको छोड़ दिया ? ऐसा क्यों संबंधीमें भी संबन्धबुद्धिका विषयपना पाया जाता है। प्रत्येक विषयमें ज्ञानका भेद है। जिस विषयको ज्ञान जान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहा है वह ज्ञान उस ही विषयका है। तो प्रतिविषय ज्ञान भेद होनेसे संबन्धियोंको ज्ञानका विषयपना कैसे कहा जा सकता है जिससे कि सम्बन्धियोंको भी संबन्धरूपता बन जाय, ऐसी आशंका भी न करना चाहिये। प्रतिविषयमें ज्ञानभेद नहीं है, अन्यथा जितने विषय हों उतने ही ज्ञान कहलायें। तो फिर मेचक ज्ञान नहीं बन सकता। चित्राद्वैत सिद्धान्तमें ज्ञान तो यह एक है और उस ज्ञानमें विषय हो रहे हैं चित्र विचित्र अनेक पदार्थ। तो चित्र विषयक अनेक पदार्थ एक साथ विषयमें आ रहे हैं और, ऐसा मान लेनेपर फिर मेचक ज्ञान आदिक किसीके नाम न बनेंगे। फिर तो चित्राद्वैत सिद्धान्त न रह सका। तो इस प्रकार उन तीन विकल्पोंमेंसे पहिला विकल्प तो न बन सका कि संबंध बुद्धिमें तद्रूपसे यह समवाय प्रतिभात होता है। समवायका क्या प्रतिभास? क्या मुद्रा, क्या ढंग है, इस संबन्धमें तीन विकल्पोंसे पूछा जा रहा है?

इह इस प्रत्ययमें समवायकी प्रतिभासमानताके विकल्पका निराकरण

अब दूसरे विकल्पकी बात कहेंगे कि 'इह' बुद्धिमें समवाय प्रतिभास होता है। जैसे कहा कि इस आत्मामें ज्ञान है, इन तन्तुओंमें पट है तो जिसके लिये 'यह' संबंध बोला गया है उसका संबन्ध 'इह' प्रत्यय समवाय प्रतिभात हो जाता है। यह बात भी सही नहीं है, 'इह' ऐसी जो बुद्धि है वह इस अधिकरणका निश्चय कराने वाली बुद्धि है। समवाय तो आधार आधेय भावरूप संबन्धके आकारसे मुद्रित है। इस कारण 'इह' इतनी मात्र बुद्धिमें समवाय घटित नहीं हो सकता है। "इह" कहा तो इससे अधिकरण जाना गया। इसमें बेर है, तो 'इसमें' ऐसा कहकर क्या जाना गया? केवल आधार। तो 'इह' इस बुद्धमें भी समवाय प्रतिभास नहीं होता। अन्य प्रकारके प्रतीयमान होनेपर अन्य आकार रूप अर्थकी कल्पना नहीं की जा सकती। अन्यथा तो बड़ी विडम्बना बन जायगी। घटका तो प्रतिभास हो रहा हो और पटका प्रतिभास आ पड़े फिर तो कोई व्यवस्था ही न रहेगी। तो जिस आकारमें जो बात है वही प्रतिभात होती है, अन्य आकारमें पदार्थ प्रतिभात नहीं होते। तो 'इह' इस बुद्धिमें अधिकरण तो जाना जायगा पर समवाय न जाना जायगा।

समवाय इस बुद्धिमें समवायकी प्रतिभासमानताके विकल्पका निराकरण

अब यदि कहोगे कि समवाय इस अनुभवमें (बुद्धिमें) तो यह प्रतीयमान होता है सो भी बात घटित नहीं है। समवाय बुद्धि हो कहाँ रही है। वही तो असम्भव है। यह तंतु है। यह पट है, यह समवाय है इस प्रकार एक दूसरेसे विभक्त जुदे तीन चीजें बाह्य ग्राह्याकार रूपसे जैसे कि घट, घट, रस्सी ये बाह्य ग्राह्याकार रूप प्रतिभासमें आते हैं इस तरहसे ये तीन चीजें पृथक् किसीके प्रतिभासमें तो आती हैं नहीं। किसीको भी यह अनुभव नहीं होता कि यह समवाय है। इस कारण जो तुम्हारा तीसरा विकल्प है कि समवाय, इस अनुभवमें समवाय प्रतिभासमान होता

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। वह घटित नहीं हो सकता। तो जब समवायका प्रतिभास घटित नहीं हो रहा तो उसे संम्बन्ध मानना और उसकी व्यवस्था बनाना कि समवाय एक है सर्वव्यापक है, वह सब एक कल्पनाजाल है।

समवायके प्रतिभासमानत्वके विकल्पोंका निराकरण— कदाचित् मान लो कल्पनाजालमें कि समवायप्रतिभासमान होता है तो यह बतलावो कि सर्व पदार्थोंमें समवायीरूप अथवा अनुगत एक स्वभावरूप यह समवाय प्रतिभासमान होता है या उनसे व्यावृत्त स्वभाव वाला समवाय प्रतिभासमान होता है ? याने जो समवाय प्रतिभासमें आ रहा है वह पदार्थोंसे अलग स्वभाव होता हुआ प्रतिभासमें आ रहा है या विश्वके समस्त पदार्थोंमें समवायी बनकर सबमें अनुगत रहकर एक स्वभाव रूप प्रतिभासमें आता है इन दो विकल्पोंमेंसे यह तो स्पष्ट अनुचित है कि व्यावृत्त स्वभाव वाले समवाय प्रतिभासमें आते हैं। इससे तो आपके सिद्धान्तकी रंच भी सिद्धि नहीं होती। बिल्कुल विरोधमें बात आती है। सभी पदार्थोंसे भिन्न रूपसे रहनेका स्वभाव वाला कुछ हो जिसका किसी अन्यसे सम्बन्ध ही नहीं है तो वह तो आकाश फूलवत् असत् हो गया और उसका किसीसे संबन्ध भी नहीं बन सकता। फिर समवायपना तो बनेगा ही कैसे ? सर्वमें समवायी बनकर रहने वाला समवाय तो प्रतिभासमान होना सिद्ध नहीं होता और इसी तरह सर्व पदार्थोंमें अनुगत होकर एक स्वभावरूप भी समवाय सिद्ध नहीं होता, क्योंकि यदि तुम्हारी ही बात मानेंगे कि जो सबमें अनुगत हो और एक स्वभाव हो वह समवाय कहलाता है तो सामान्य आदिक पदार्थ वैशेषिकाभिमत अनेक ऐसे हैं कि अनेक पदार्थोंमें अनुगत एक स्वभाव वाले हैं। उनका भी समवायपना फिर तो मान लिया जायगा। और, सीधीसी बात यह है कि समस्त समवायी पदार्थोंका प्रतिभास जब तक न हो तब तक समस्त पदार्थोंमें अनुगतरूपसे रहनेके स्वभावकी पद्धतिसे यह समवाय प्रत्यक्षसे जाननेमें नहीं आ सकता है। आप कहते हो कि समवायी समस्त पदार्थोंमें अनुगत होकर एक स्वभावरूप रहता है है तो इसका बोध कब हो जब समस्त समवायीका परिज्ञान हो जाय। सो समस्त समवायीका परिज्ञान हो नहीं रहा। अब शंकाकार कहता है कि अनुगतरूप और व्यावृत्तरूपको छोड़कर और ढंगसे यह समवाय संबन्धरूपसे प्रतीयमान होता है। समाधानमें कहते हैं कि ऐसी सम्बन्धरूपताका तो पहिले ही उत्तर दिया जा चुका है कि सम्बन्ध नाम किसका है और उस सम्बन्धके स्वरूपके बारेमें ५ विकल्पोंमें पूछा गया था कि संबन्ध स्व जाति युक्तको संबन्ध कहा है या सम्बन्ध बुद्धिके उत्पादकको सम्बन्ध कहा है ? इत्यादि इन सब विकल्पोंका निराकरण कर दिया गया है, यों पहिले समवाय और सम्बन्ध तकका भी स्वरूप सिद्ध नहीं होता है।

शंकाकार द्वारा अनुमानप्रमाणसे समवायकी सिद्धि करनेका आरम्भ— शंकाकार कहता है कि समवायका परिचय अनुमान प्रमाणसे होता है। वह अनुमान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इस प्रकार है "इन तंतुवोंमें पट है" इत्यादि रूप जो इह प्रत्यय हो रहा है वह सम्बंध का कार्य है, क्योंकि अबाध्यमान इह प्रत्यय होनेसे। जैसे कि इस कुण्डमें दधि है, यहाँ अबाध्यमान इह प्रत्यय है तो वह सम्बंधका कार्य है इस अनुमानसे इतना तो निर्विवाद सिद्ध होता है कि 'इसमें" ऐसा जहाँ ज्ञान हो रहा हो वहाँ सम्बंध अवश्य होता है। तो "इह" जो ज्ञान होता है वह सम्बंधका कार्य है। सम्बंध है तब इह एक बोध हुआ करता है। अब इसके बादमें यह विचार और करना है कि तंतुवोंमें पट है ऐसा कहनेपर सम्बंध तो है और यह निश्चय हो चुका, अब किस जातिका सम्बंध है यह निर्णय और करना है। इस निर्णयसे पहिले आधार तो बन ही गया ना, कि इह इदं प्रत्यय अहेतुक नही हो सकता, क्योंकि यह ज्ञान कादाचित्क है। जो जो भी वस्तु कादाचित्क होती है, जो जो भी परिणमन बात कादाचित्क होती है वह नियमसे सहेतुक होती है। तो इस कुण्डमें दधि है ऐसा ज्ञान है वह भी कादाचित्क है और तंतुवों में पट है ऐसा जो ज्ञान हो रहा है वह भी कादाचित्क है, अतएव इस ज्ञानका कोई हेतु अवश्य होना चाहिए और वह हेतु है सम्बन्ध।

'तन्तुषु पटः' इस ज्ञानकी तन्तुहेतुकता व पटहेतुकताका निराकरण— इस प्रसंगमें कोई यह नहीं कह सकता कि तंतुवोंमें पट है। ऐसा जो ज्ञान हो रहा है वह तंतु हेतुक है अथवा पट हेतुक है याने ततुवोंमें पटका जो बोध हो रहा है वह तंतुवोंके कारण हो रहा है, इस ज्ञानका कारण कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि तंपुवोंमें पट है यह ज्ञान यदि तंतु हेतुक होता अथवा पट हेतुक होता तो वहा इस तरहसे ज्ञान होना चाहिये था कि यह तंतु है पट है या यह पट है। अगर तंतुवोंके कारणसे ज्ञान हो रहा है तो वहाँ इस प्रकारका ज्ञान होगा कि यह तंतु है और पटके कारणसे यदि ज्ञान हो रहा हैं तो वह इस ही मुद्रामें ज्ञान होगा कि यह पट है, तंतुवोंमें पट है ऐसे ज्ञानका कारण न तंतु है न पट है, किन्तु कोई सम्बन्ध है। कोई क्षणिकवादी यहां यह भी शंका नहीं कर सकता कि तंतुवोंमें पट है ऐसा जो ज्ञान हो रहा है वह वासना हेतुक है, सम्बन्ध हेतुक नहीं क्योंकि क्षणिक पदार्थोंमें सम्बन्धकी कल्पना ही नहीं उठती है। पदार्थ उत्पन्न होते ही अपने स्वरूपका लाभ ले या अन्य पदार्थोंका सम्बन्ध बनाये स्वरूप लाभ ही होगा और फिर उत्तर क्षणमें वह पदार्थ रहता ही नहीं। अतः जो कुछ भी यह सम्बन्ध विषयक ज्ञान होता है वह सम्बन्ध हेतुक नहीं है। किन्तु वासनाहेतुक हैं, ऐसा भी कोई क्षणिकवादी कह नहीं सकते। इसका कारण यह है कि वासना स्वयं कारणरहित है। तो वासना का ही होना सम्भव नहीं है। वासनाकी ही उत्पत्ति नहीं है तब फिर इह इदं प्रत्ययको वासनाहेतुक बताया जाय, यह कैसे युक्त हो सकता है। क्षणिकवादमें वासनाका कोई कारण नहीं बन सकता। यदि वे कहें कि पूर्व ज्ञान कारण बन जायगा तो यह बतावें वे कि पूर्वज्ञान जो बना है उसका कारण कौन है ? यदि कहो कि उसकी पहिली

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वासना है तो उस वासनाका कारण कौन है ? पूर्वज्ञान। इस तरहसे अनवस्था दोष हो जायगा। तो जब वासनाका कोई कारण ही न बन सका, वासनाका सद्भाव ही सिद्ध न हो सका, तो किसी ज्ञानको वासनाहेतुक कहना बिल्कुल अयुक्त बात है।

"तन्तुषु पटः" इस ज्ञानकी वासनाहेतुकताका निराकरण—यदि क्षणिकवादी यह कहें कि ज्ञान और वासनामें अनादिपनका सम्बन्ध है अर्थात् यह परम्परा अनादिसे चली आ रही है। ज्ञान वासनासे हुआ, वासना पूर्व ज्ञानसे हुई, वह ज्ञान वह वासनासे हुआ। इस तरहसे ज्ञान और वासनामें अनादिपना होनेसे दोष नहीं लग सकता है। ऐसा क्षणिकवादी सिद्ध नहीं कर सकते हैं। कारण यह है कि इस तरह ज्ञान और वासनामें अनादिपनकी सिद्धि की जाय तो देखो नील आदिक पदार्थोंका संतानान्तर याने परत्व और नील आदिकका स्वसंतान और ज्ञानाद्वैत इन की सिद्धिका भी अभाव हो जायगा। क्योंकि नील आदिकसे उत्पन्न होने वाला ज्ञान तो यह नील है इस प्रकारसे ही उत्पन्न होता है ना ? और, विद्यमान नील आदिकसे उत्पन्न होनेके कारण अब कल्पनामात्र वासनासे उत्पन्न होना नहीं बन सकता। इस कारण "इह इदं" इस प्रत्ययको अनादि वासना हेतुक नहीं कह सकते और नील आदिक ज्ञानको भी अनादि वासनाके वशसे नहीं कह सकते। यदि वहां आप यह कहें कि नील आदिक ज्ञान स्वतः ही प्रतिभासमान होते हैं तो यह बात क्षणिकवादमें सम्भव नहीं है और इसी कारण जो तंतुवोंमें पट है, इस प्रकारको इह इदं की मुद्रा वाला ज्ञान हुआ है वह कादाचित्क है इसलिये अहेतुक तो हो नहीं सकता। सो उस ज्ञानका जो कुछ भी हेतु है वह सम्बन्ध है। क्योंकि अबाध्यमान इह प्रत्यय हो रहा है। जहां इ धिकरणरूप, इह की मुद्रारूप प्रत्यय होगा वहां सम्बन्ध अवश्य होगा और यह सम्बन्धरूप ज्ञान न तो आधारभूत पदार्थोंके कारण हुआ और न आधेयरूप पदार्थ के कारण हुआ और न वासनाके कारण हुआ, यह तो सम्बन्धके कारण हुआ है।

"तन्तुषु पटः इस ज्ञानमें तादात्म्यहेतुकता व संयोग हेतुकताकी असिद्धिका प्रशंकन—अब कोई स्याद्वादी ऐसी शंका करे कि तंतुवोंमें पट है यह जो ज्ञान हुआ है वह तादात्म्य हेतुक हुआ है तो यह भी वे न कह सकेंगे कारण यह है कि तादात्म्यका अर्थ है एकत्व और एकत्व जहां है अर्थात् एक हो बात जहां रह गयी वहां सम्बन्धका अभाव रहता, क्योंकि सम्बन्ध हुआ करता है दो पदार्थोंमें पर तंतु और पट में तो अब दोपना रहा ही नहीं। तादात्म्य जब मान लिया गया तो तादात्म्यके मायने एकपना। एकपनाका आधार है एक। एकमें सम्बन्ध क्या ? और असलियत तो यह है कि तंतु और पटमें एकत्व तो है नहीं क्योंकि प्रतिभास भेद हो रहा है। तंतु तंतु ही कहलाता है, पट पट ही कहलाता है। तंतुवोंके प्रतिभासमें और ही आकारसे वस्तु ज्ञात हो रही है और पटके प्रतिभासमें ज्ञेय और ही प्रकारसे प्रतिभासित होता है इस कारण तंतु और पटमें एकपना नहीं हो सकता। विरुद्ध धर्मोंका भी इसमें अध्यास है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तंतुमें तंतुके धर्म हैं। लम्बा होना, इतनी सूची मात्र होना और पटमें धर्म और प्रकार है, ततुवोंसे ठढ तो नही मिटाई जा सकती। पटमें ठढ मिटती, तन ढकता। तंतुवोंका काम और है पटका काम और है फिर तंतु और पटमें एकता कैसे हो सकती है ? और फिर परिमाणमें भी अन्तर है। तंतुवोंका परिमाण और ढंगका है, पटका परिमाण और ढंगका है। तंतु हजारों गजके हैं और पट देखो १०—२० गजका ही है, तो परिमाणमें भी अन्तर है, संख्यामें भी अन्तर है। तंतुवोंकी हजारोंकी संख्या है पर पट तो एक ही रहता है। फिर जातिभेद भी है। तंतुमें तंतुत्व है, पटमें पटत्व है. इस कारण इतने भिन्न जचने वाले तंतु और पटमें एकताकी बात कहना कैसे युक्त है ? और, जब एक नही है तो उनमें तादात्म्य भी कैसे कह सकते हो ? इससे तंतुवोंमें पट है यह ज्ञान तादात्म्य हेतुक नही किन्तु सम्बन्ध हेतुक है। कोई यह कहे कि तंतुवोंमें पट है यह ज्ञान संयोग हेतुक है। बहुतसे तंतु उनमें संयोग किया गया इस कारणसे पटका ज्ञान हुआ। यों संयोग हेतुक भी न बताया जा सकेगा। इसका कारण यह है कि युत सिद्ध पदार्थोंमें ही संयोग सम्भव होता है। पट यदि भिन्न पदार्थ होता और तंतु भिन्न पदार्थ होता और भिन्न पदार्थ होनेके मायने यह है कि ततु जैसे पहिलेसे प्रसिद्ध है इसी प्रकार पट भी पहिलेसे प्रसिद्ध होता। तब इन दोका संयोग बताया जा सकता था लेकिन तंतु और पट युतसिद्ध पदार्थ नही हैं इसलिए तंतुवोंमें पट हैं इस प्रकारका जो ज्ञान हुआ है वह संयोग हेतुक भी नही है।

सम्बंधपूर्वक निश्चित हुए "तंतुओंमें पट है" इस ज्ञानकी समवाय-पूर्वकताकी सिद्धिका शंकाकार द्वारा कथन—यहाँपर कोई यह कहे कि यदि तंतुवोंमें पट है ऐसा ज्ञान समवाय पूर्वक सिद्ध हो रहा है तो फिर कोई दृष्टान्त बताओ क्योंकि, जो भी दृष्टान्त दोगे अभी तो वह पक्षमें ही है। अर्थात् समवायकी सिद्धि ही की जा रही है तो कोई साध्य दृष्टान्तमें न मिल सकेगा। और, साध्य विकल होनेसे हेतु विरुद्ध बन जायगा ऐसा भी कोई नही कह सकता। क्योंकि इस समय तंतुवोंमें पट है इस प्रकारके ज्ञानको समवायपूर्वक नही सिद्ध कर रहे हैं, अभी तो हम न तो समवायपूर्वक सिद्ध कर रहे और न संयोग पूर्वक सिद्ध कर रहे, इस समय तो केवल सम्बंधमात्र पूर्वक सिद्ध कर रहे और खूब समझलो— तन्तुवोंमें पट है इस प्रकारका ज्ञान देखो ! न तो तंतुवोंके कारणसे हुआ न पटके कारणसे हुआ। तंतुके कारणसे होता तो ये तंतु हैं इतना ही ज्ञान होता। पटके कारणसे होता तो यह पट है इतना ज्ञान होता। वासना सिद्ध हो ही नहीं सकती। तो वासना हेतु कभी नहीं कह सकते। तादात्म्य भी नहीं बन रहा है। तादात्म्य हेतुक भी यह ज्ञान नहीं है। संयोगहेतुक भी यह ज्ञान नहीं है। तो जब "इह इदं" प्रत्यय अहेतुक तो है नहीं और आधार आधेय संयोग वासना तादात्म्य इनके कारण भी नहीं हो रहा है तो परिसेष्य न्यायसे यही सिद्ध हो सकता है कि तंतुवोंमें पट है इस प्रकारके ज्ञानको समवाय ही उत्पन्न कर सकता है। तो अनुमानसे तंतुवोंमें पट है इस प्रकारके बोधको सम्बन्धमात्र हेतुक सिद्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करके अब विशेष दृष्टिसे खोज करें कि आखिर वह कौनसा सम्बन्ध है, तो भली प्रकार विदित होगा कि 'इह इद" प्रत्यय जो अयुतसिद्ध में हो रहा है वह समवाय सम्बन्ध पूर्वक हो रहा है और उत्पत्ति जो पटकी हुई है उसका समवायी कारणमें क्रिया होती है वह तो समवायरूप है। संयोगरूप नहीं बनती। तो अनुमानसे यह बात विशिष्ट प्रतीत हो गयी कि समवाय सम्बन्ध है। उसका परिचय अनुमानसे निर्विवाद सिद्ध हो जाता है।

शंकाकारके समवायसाधक अनुमानमें हेतुकी आश्रयासिद्धता – अब उक्त शंकाका समाधान करते हैं। शंकाकारने जो यह कहा कि समवायकी सिद्धि अनुमानसे हो जाती है और वह अनुमान दिया गया है यह कि इन तंतुवोंमें पट है आदिक जो इह प्रत्यय हो रहा है, "इसमें" ऐसा जो ज्ञान हो रहा है वह सम्बन्धका कार्य है, क्योंकि अबाध्यमान 'इह' प्रत्यय होनेसे। जैसे कि मटकामें दही है। यहां जो इह प्रत्यय हो रहा है सो सम्बन्धका कार्य है ना! दहीका मटका आधार है, दही आधेय है और उस प्रसंगमें जो 'इसमें" ऐसा ज्ञान हो रहा है वह सम्बन्धके कारण ही हो रहा है इस प्रकार समवायकी सिद्धिके लिये जो अनुमान दिया है वह बिना विचारे ही कहा गया है, क्योंकि इस अनुमानमें जो हेतु दिया है वह आश्रयासिद्ध है। अप्रसिद्ध विशेषण है और स्वरूपासिद्ध है तथा अनैकान्तिक भी है। आश्रयासिद्ध तो यों है कि ऐसा ज्ञान जो बताया है कि "इन ततुवोंमें पट है" सो प्रतिवादीके लिये इस ज्ञानकी सिद्धि मान्य नहीं है। ततुवोंमें पट कहाँ है ? तंतु ततु है, पट पट है। ततुवोंमें तंतु ही हैं, पटमें पट है। यहाँ "इहेदं" यह ऐसा अबाधित प्रत्यय नहीं है कि जिसके विरुद्ध और कुछ न कहा जा सकता हो। तो "इन तंतुवोंमें पट है" ऐसा ज्ञान है यहां धर्मी। इस अनुमानमें सिद्ध तो यही किया जा रहा है सो इसमें जो पक्ष है वह तो प्रसिद्ध होना चाहिए। धर्मी यदि अप्रसिद्ध है तो उसमें फिर अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। तो यहां यह धर्मी ही सिद्ध नहीं है।

शंकाकारके समवाय साधक अनुमानमें हेतुकी अप्रसिद्धिवशेषणता व स्वरूपसिद्धता – अबाधित इह प्रत्यय होनेसे यह हेतु दिया जा रहा है शंकाकार द्वारा समवाय साधक अनुमानमें। वह हेतु अप्रसिद्ध विशेषण है। यहां जो कहा कि पटमें तंतु है यदि कोई यों कह बैठता है कि देखो कपड़ेमें तंतु है, तो इसमें क्या बाधा आवेगी। बल्कि ततुवोंमें कपड़ा है। इसके बजाय ऐसा कहने वाले बहुत मिलेंगे कि इस कपड़ामें तनु हैं। तब अप्रसिद्ध विशेषण हो गया ना! जैसे कहते हैं कि वृक्षमें शाखायें हैं तो वृक्ष है अवयवी, शाखायें हैं अवयव। तो अवयवीमें अवयव बतानेकी पद्धति भी है। यहाँ भी पट तो है अवयवी और तंतु हैं अवयव, थोड़े-थोड़े हिस्से तो यहाँ भी अवयवीमें अवयव बतानेकी पद्धति विशेष है। लोग कहते हैं कि इस कपड़ेमें सूत अच्छा है। इस कपड़ेमें ऐसा सूत है, तो इस तरहके ज्ञान होनेके कारण यहां जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञान अनुमानमें बनाया है कि इन तंतुवोंमें पट है तो वह ज्ञान असिद्ध विशेषण हो गया। इन तंतुवोंमें पट है ऐसा कहकर शंकाकारका यह भाव था कि अवयवोंमें अवयवीका रहना बताया जा रहा है। लेकिन लोकमें प्रायः ज्ञान चल रहा है कि पटमें तंतु है वृक्षमें शाखायें हैं तो यहाँ अवयवीमें अवयवोंकी वृत्तिके रूपसे ज्ञान चल रहा है और यह लोक प्रसिद्ध अधिक है। तंतुवोंमें पट है ऐसा कहने वाले विरले ही होंगे जो जानकर कहेंगे। किन्तु कपड़ेमें ततु हैं ऐसी बात करनेकी एक लोक प्रसिद्धि भी है। इस कारण तुम्हारा हेतु असिद्ध विशेषण है। समवाय साधक अनुमानमें जो अबाध्यमान 'इह' प्रत्ययका हेतु दिया गया है वह स्वरूपासिद्ध भी है क्योंकि वहाँ तंतुके ज्ञानमें अथवा पटके ज्ञानमें 'इह' प्रत्ययपनेका अनुभव नहीं होता। जो कोई भी पुरुष वहां अनुभव करता है तो इस तरह अनुभव करता है कि यह पट है। तंतुवोंमें यह अनुभव करता है कि ये ततु हैं, पर ततुको निरखकर कदाचित् कोई विशेष बातका वर्णन करना चाहे तो भले ही अनेक बातें कहें लेकिन ज्ञान तो सीधा तंतु रूपसे और पट रूपसे हुआ करता है।

शंकाकारके अबाध्यमानेहप्रत्ययत्व हेतुमें अनैकान्तिक दोष—शंकाकार का हेतु अनेकांतिक दोषसे दूषित है। शंकाकारका अनुमान है कि इन ततुवोंमें पट है आदिकमें जो 'इह' प्रत्यय है वह सम्बन्धका कार्य है क्योंकि अबाध्यमान 'इह' प्रत्ययरूप होनेसे। तो जहाँ जहाँ इह इह प्रत्यय हो जिसमें "इह" ज्ञान चले, वहाँ वहाँ सम्बन्ध होना चाहिये ना तभी तो अनुमान सही कहलायेगा। लेकिन देखिये! अब यह ज्ञान होता है कि इस प्रागभावमें अनादिपना है तो आप बतलावो कि इस प्रागभावका और अनादिपनेका कोई सम्बन्ध भी है। अभाव तो तुच्छ अभाव है। उसका क्या सम्बन्ध है। अभाव ४ प्रकारके कहे गए हैं—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभाव। प्रागभाव, कहते हैं कार्य होनेसे पहिले कार्यके अभाव होनेको। यद्यपि प्रागभावका भाव यह है कि किसी भी क्रियासे पहिले जो स्थिति है उन स्थिति का नाम है प्रागभाव, लेकिन विशेषवादमें अभावको भाव स्वरूप नही माना है, तुच्छाभाव माना है तो क्रियाका पहिले अभाव होना यह बात बतावो किसी दिनसे है या अनादिसे है? जिस समय जो भी परिणति होती है उस परिणतिका उस समयसे पहिले अनन्तकाल तक अभाव था। तो यों प्रागभाव अनादि सिद्ध ही है। और उसमें यह ज्ञान भी चलता है कि प्रागभावमें तो अनादिपन है अर्थात् प्रागभाव किसी दिनसे शुरू हुआ हो ऐसा नही है, किन्तु अनादिकालसे बराबर चला आ रहा है। जिस समय जो परिणति होती है उसका उससे पहिले अभाव था। तो ज्ञान भी किया गया इस तरह कि इस प्रागभावमें अनादिपन है लेकिन प्रागभावका और अनादिपनका कोई सम्बन्ध नही। उस 'इह' ज्ञानमें सम्बन्धपूर्वकताका अभाव है। हेतु तो मिल गया, पर साध्य नहीं बन रहा, इस हीका नाम है अनैकान्तिक दोष। और, भी देखिये! प्रध्वंसाभावके प्रति भी यह कहा जाता है कि प्रध्वंसाभावमें प्रध्वंसाभावका अभाव है, याने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो चीज मिट गई उस मिटनेके मिटनेका अभाव है। याने फिर न हो जायगा। जो मिटा सो मिटा ही मिटा। तो प्रध्वंसाभावमें प्रध्वंसाभावका अभाव है। यदि प्रध्वंसाभावका अभाव न हो प्रध्वंसाभावमें, तो उसका मतलब यह निकाला जायगा कि कभी प्रध्वंसाभाव मिट जायगा। पर ऐसा कहीं हुआ है? जो पर्याय मिटी सो मिटी। उस के समान पर्याय बनती रहो। पर जिसका प्रध्वंसाभाव हो उसका तो सदा ही प्रध्वंसाभाव हो। तो प्रध्वंसाभावमें प्रध्वंसाभावका अभाव है ऐसा प्रत्यय तो हो रहा, अबाध्यमान 'इह" ज्ञान तो हो रहा लेकिन सम्बन्धपूर्वक नहीं है वह इह ज्ञान, क्योंकि आधार आधेय यहाँ दोनों अभावरूप हैं।

प्रागभाव व अनादित्व विशेषण विशेष्यभाव सम्बन्ध माननेकी अयुक्तता—शंकाकार कहता है कि हम यहाँ विशेषण विशेष्य रूप सम्बन्ध मान लेंगे। विशेष्य है प्रध्वंसाभाव और विशेषण बन जायगा प्रध्वंसाभावका अभाव। इसी तरह प्रागभावमें अनादिपन है यहाँ प्रागभाव सो हो जायगा विशेष्य और अनादिपन हो जायगा विशेषण। तो इसमें सम्बन्ध बन गया ना, तब तो हेतु सही हो गया कि जहां अबाध्यमान 'इह' प्रत्यय हो वहां समझना चाहिये कि वह सम्बन्ध पूर्वक है। समाधानमें कहते हैं कि जब सम्बन्ध ही नहीं है उनमें, अभावरूप चीज है, प्रागभाव है सो भी अभावरूप, अनादि शब्द है—सो भी अभावरूप, आदि नहीं हैं, प्रध्वंसाभाव है सो भी अभावरूप, प्रध्वंसाभावका अभाव है सो भी अभावरूप। उनमें सम्बन्धकी क्या चर्चा है? और जब सम्बन्ध नहीं बन सकता तो विशेषण विशेष्य भाव तो असम्भव है। यदि सम्बन्धके बिना विशेषण विशेष्यभाव बना दिया जाय तो इसका परिणाम यह निकलेगा कि सभी चीजें सभीके विशेषण और विशेष्य बन जायेंगे क्योंकि अब सम्बन्धके बिना ही कुछसे कुछ किसीका विशेषण विशेष्य बनने लगा। पर ऐसा तो नहीं है। सम्बन्धके होनेपर ही द्रव्य, गुण कर्म आदिकमें एकका विशेषणपना तो दूसरेका विशेष्यपना माना जा सकता है। लेकिन अब सम्बन्धके अभावमें भी विशेषण विशेष्य भावकी कल्पना करने लगे तो इसमें तो बड़ी विडम्बना बन जायगी। कहो विन्ध्याचल पर्वत और हिमालय पर्वत इन दोनोंमें विशेषण विशेष्य भाव रच डालो, एक पहाड़ विशेषण हो गया। एक विशेष्य, पर है क्या ऐसा? दोनों दूर दूर अपनी अपनी जगह स्वतंत्र स्वतंत्र रूपसे पड़े हुए हैं, उनमें सम्बन्धभाव ही नहीं है। जब सम्बन्ध नहीं होता तो उनमें विशेषण विशेष्य भावकी कल्पना नहीं की जा सकती। तो शंकाकारका यह हेतु कि "अबाध्यमान इह प्रत्यय होनेसे" अनेकान्तिक दोषसे दूषित हो जाता है।

प्रागभाव व अनादित्वके विशेषणविशेष्यभावमें निबन्धन अदृष्टको माननेकी मीमांसा—शंकाकार कहता है कि हम यहां अदृष्टरूप सम्बंध विशेषण विशेष्य भावका कारण मान लेंगे। याने प्रागभावमें अनादिपनकी जो बात कही गयी है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सो वहाँपर प्रागभाव विशेष्य है, अनादिपन विशेषण है। इस भावको बताने वाला कारण क्या है। ऐसा पूछा गया है तो हम अदृष्ट नामका सम्बन्ध कहेंगे। क्योंकि जब अदृष्ट अनुकूल होता तब पदार्थोंमें वे परिणतियाँ होती हैं। भाग्यके अनुसार सब दृष्टि चलती है ना, तो इसमें हम अदृष्टका सम्बन्ध बता देंगे। समाधानमें कहते हैं कि यह बात आपकी यों ठीक नहीं कि संबंध आपने ६ माने हैं। फिर तो संख्याका विघात हो जायगा। अब तो यह अदृष्ट नामका भी सम्बन्ध कहा जाने लगा। और, इस अदृष्ट में संबन्धरूपता है ही नहीं। क्योंकि सम्बन्ध होता है दो पदार्थोंमें रहने वाला। लेकिन अदृष्ट तो आत्मामें रहने वाला बताया गया। अदृष्ट आत्मामें रहने वाला है तो न वह प्रागभावमें ठहरा और न अनादिपनमें ठहरा। तो प्रागभाव और अनादिपन दो में न ठहरने वाला अदृष्ट नामक संबन्ध कैसे द्विष्ठ बन जायगा यह बात विचारनेकी है। और, यदि यत्र अदृष्ट अदृष्ट नामका सम्बन्ध मान लिया जाता है तो गुण गुणी आदिक भी इस अदृष्टके कारण ही सम्बद्ध हो जायेंगे। जैसे कि प्रागभावमें अनादिपनका सम्बन्ध अदृष्टने बना डाला है तो सभी जगह गुण गुणी आदिकमें सम्बन्ध अदृष्टसे कहा जायगा। फिर समवाय संयोग आदिक सम्बन्धकी कल्पना करना व्यर्थ है। सब जगह अदृष्टकी बात लगा दी जायगी। तो समवायकी सिद्धिके लिए जो हेतु दिया है कि "अबाध्यमान इह प्रत्ययरूप होनेसे" "इह इदं" इसमें जो ज्ञान हो रहा है वह सम्बन्ध पूर्वक है यह हेतु असिद्ध भी है और अनैकान्तिक दोषसे दूषित भी है।

संबंधसाधक हेतुसे संबंधमात्रकी सिद्धिमें अविवाद –विशेषवादी यह बतलायें कि इस अनुमानसे जो कि समवायको सिद्ध करनेके लिए कहा गया है कि "इन तंतुओंमें पट है आदिक रूपमें जो इह प्रत्यय (ज्ञान) है वह सम्बन्धका कार्य है क्योंकि अबाध्यमान इह प्रत्यय होनेसे" तो इस अनुमानके द्वारा क्या सम्बन्ध मात्रकी सिद्धि की जा रही है या सम्बन्ध विशेषकी सिद्धि की जा रही है? यदि कहो कि सम्बन्ध मात्रकी सिद्धि की जा रही है तब तो ठीक है, तादात्म्य नामक सम्बन्ध इष्ट ही है तंतुपटमें, किसी प्रकारके अनेक एक पदार्थोंमें तादात्म्य नामका सम्बन्ध है। शंकाकार कहता है कि तंतु और पटमें तादात्म्य कैसे है? यदि इनमें तादात्म्य होता तब तो या तंतु रह जाता? तादात्म्यके मायने तो है एक रह जाना। दो रहें तो तादात्म्य क्या रहा? तंतु और पटमें यदि तादात्म्य सम्बन्ध हो तो इसका परिणाम यह निकलेगा कि या तो तंतु रहेगा या पट रहेगा। और, फिर दूसरी बात यह है कि तंतु और पट ये दोनों सम्बन्धी एक बन गए तो सम्बन्ध ही नाम किसका है, क्योंकि सम्बन्ध तो द्विष्ठ होता है। दो पदार्थोंमें सम्बन्ध लग जाता है। समाधानमें कहते हैं कि जो दो पदार्थोंमें सम्बन्ध लगता है उसको तो इस प्रकारका अभाव कह सकते हो कि अब सम्बन्धी एकपनेको प्राप्त हुए तो फिर द्विष्ठ कहाँ रहा और सम्बन्ध कहाँ रहा? किन्तु तादात्म्यरूप सम्बंध तो द्विष्ठ नहीं हुआ करता। तादात्म्य सम्बन्धका तो अर्थ है तत्स्वभावतः उस स्वभाव रूप है। यही तादात्म्यका अर्थ है तो एक पदार्थ रहे और उसमें उसके स्वभावकी बात

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कही जाय कि यह पदार्थ इस स्वभाव रूप है तो यहाँ दोको बात कहाँ कही गई ? तत्स्वभावता रूप सम्बन्धको तादात्म्य कहते हैं। उसका अभाव तंतु पटमें नही किया जा सकता है, क्योंकि तंतुस्वभाव ही पट है। इससे भिन्न कोई पट नही है। तंतु और पट ये दो पदार्थ अलग अलग हों और फिर इनमें किसी सम्बन्धकी बात कही जाय तो द्विष्ठ कहा जायगा, पर यहाँ दो हैं ही कहाँ ? तंतु ही सब आतान वितान रूप होकर पटरूप बन गए। आतान वितान रूप हुए तंतुवोंसे भिन्न कोई पट उपलभ्यमान हैं। तंतु यह है, पट यह रखा है, कोई देश आदिकसे भिन्न पट नही है तो यह तादात्म्य सम्बन्ध है और इस अनुमानसे यदि सम्बन्धमात्र सिद्ध करते हो तो उसमें कोई आपत्ति नही है। पर, वह सम्बन्ध यहाँ तादात्म्यरूप है समवाय नामका कोई पदार्थ अलग हो और उसके कारण इह इदं प्रत्यय हुआ करता हो सो बात नही है।

संबंधसाधक हेतुसे समवायसंबंध विशेष सिद्ध करनेकी अनुपपत्ति—यदि कहो कि हम उक्त अनुमानसे सम्बन्ध विशेष सिद्ध कर रहे हैं, तंतुवोंमें पट है और उसके लिए जो अनुमान दिया है कि "इह इदं" यह ज्ञान सम्बन्धका कार्य है, अबाध्यमान इह प्रत्यय होनेसे" और उससे हम सिद्ध करना चाहते सम्बन्ध विशेष तो यह बतलावो कि वह सम्बन्ध विशेष क्या संयोग नामका है या समवाय नामका है ? जिस सम्बन्ध विशेषको इस अनुमानसे सिद्ध करना चाहते हो ? यदि उसे संयोग सम्बन्ध कहोगे तो ऐसा तो तुमने माना ही नही है तंतुवोंमें पट है, इसमें जो "इह इदं" प्रत्यय हो रहा है वह संयोग पूर्वक नही माना है विशेषवादमें। और कहो कि समवाय सम्बंध है वह याने यह अनुमान तंतुवोंमें पट है' इसमें समवाय सम्बन्धको सिद्ध कर रहा है तो फिर इस अनुमानमें जो दृष्टान्त दिया है कि "कुण्डमें दधि इत्यादि इह इदं प्रत्ययकी तरह" तो दृष्टान्तमें तो समवाय नही माना गया है तब दृष्टान्त साध्य विकल हो जायगा। शंकाकारका पूरा अनुमान दृष्टान्त सहित इस प्रकारका है कि इन तंतुवोंमें पट है आदिकमें जो इह प्रत्यय है वह सम्बन्धका कार्य है। अबाध्यमान इह प्रत्यय होने से जैसे कुण्डमें दधि है इसमें इह प्रत्ययरूप हो रहा है। सो अनुमान तो दिया यह और दृष्टान्त दिया कुण्ड दधिका। तो अनुमानके द्वारा जो तुम साध्य सिद्ध करना चाहते हो वही साध्य तो दृष्टान्तमें आना चाहिये। अब अनुमानसे तो तुम साध्य सिद्ध करना चाहते हो समवाय सम्बन्ध, और वह दृष्टान्तमें पाया नहीं जाता इस कारण सम्बन्ध विशेष भी सिद्ध करनेका अनुमान सही नहीं उतरता।

परिशेषन्यायसे समवायसिद्धि करनेका शंकाकारका प्रस्ताव—अब शंकाकार कहता है कि हम इस अनुमानसे न तो संयोग सिद्ध करना चाहते न अनुमान सिद्ध करना चाहते, किन्तु सम्बंमात्र सिद्ध करना चाहते। और, फिर सम्बन्धमात्र सिद्ध हो जानेपर परिशेषन्यायसे समवाय सिद्ध हो जाता है यह बात बतायेंगे। समाधानमें कहते हैं कि यह भी तुम्हारा कथन मात्र है। परिशेषन्यायसे समवायकी सिद्धि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होना असम्भव है क्योंकि प्रथम तो समवाय सम्बन्धमें अनेक दोष दिखाये गए हैं। समवाय पदार्थकी सिद्धि ही नही होरही है और फिर परिशेषन्याय तो वहाँ चलेगा जहाँ अन्य-अन्य सम्बन्ध तो अनेक दोषोंसे दूषित हों और समवाय सम्बन्ध निर्दोष हो। वहां ही तो परिशेषन्यायसे सम्बन्ध सिद्ध किया जा सकेगा जैसे कि लो और और सम्बन्ध माननेमें यहां यहां दोष आता है किन्तु समवाय सम्बन्ध माननेमें कोई दोष नही आता पर ऐसा तो नही है। समवाय सम्बन्धकी ही सिद्धि नही हो रही है तब परिशेष न्यायसे सम्बन्धकी बात बताना कहां युक्त है ? तथ्यकी बात यह है कि पदार्थ ही स्वयं जिस रूपसे हैं उस रूपसे बनाये जाते हैं और उनमें यदि कोई पदार्थ निरन्तर है तो उसे कहते हैं संयोग सम्बन्ध। संयोग नामका कोई गुण नही है, पदार्थ नही है कि जिसकी वजहसे संयुक्त कहा जाय, किन्तु वे पदार्थ निरन्तर रहने वाले हैं। उनके बीचमें अन्तर नहीं पड़ा हुआ है। इस कारण संयोग कहते हैं, और, समवाय एक ही पदार्थमें प्रयोजनवश भेद करके बात कही जाती है, उस कथनमें समवाय कह लीजिए जिसका कि सही नाम तादात्म्य है तो न तो संयोग नामक पदार्थ ही कुछ है और न समवाय नामक पदार्थ ही कुछ है, फिर अनुमान से समवाय पदार्थकी कैसे सिद्धि की जा सकेगी ?

समवायसिद्धिमें परिशेषन्यायकी असम्भवता—अच्छा, अब बतलाओ कि जो तुम कह रहे हो कि परिशेष न्यायसे सम्बन्ध सिद्ध होता है तो वह परिशेष क्या चीज कहलाती है ? शंकाकार कहता है कि परिशेषका यह अर्थ है कि प्रसक्तोंका प्रतिषेध करनेपर शेष बचे हुएके ज्ञानका जो कारण बने सो परिशेष है। कोई बात कहे और उसके अनुरूप कुछ-कुछ सदृश अनेक वस्तुओंका प्रसंग आये, ये सभी लागू होना चाहिये यों स्थितियाँ आयें तो उनमेंसे प्रसक्तका तो प्रतिषेध कर देते हैं याने जो वास्तविक लागू होने योग्य नही है और वह भी लागू होनेके लिए आया है तो उसका निषेध कर देते हैं फिर जो कुछ शेष बचे उसका जो ज्ञान कराये उस ज्ञानका नाम है परिशेष तो समाधानमें पूछते हैं कि जिसको आपने परिशेष कहा है, जो प्रसक्तोंका प्रतिषेध करनेपर शेष बचेका ज्ञान कराये उसे परिशेष कहते हैं तो ऐसा परिशेष प्रमाण है अथवा अप्रमाण ? अप्रमाण तो कह नही सकते क्योंकि जो स्वयं अप्रमाण है उसके द्वारा किसी भी अभिमतकी सिद्धि कैसे की जा सकती है ? जब साधन ही अप्रमाण है तो उसके द्वारा किसी तत्त्वको सिद्ध कैसे किया जा सकता है ? क्योंकि अगर अप्रमाण अभिमत सिद्ध करने लगोगे तो इसमें अतिविडम्बना आ जायगी। फिर तो अटपट जिस चाहे बातसे जिस चाहेकी सिद्धि कर दी जाय। यदि कहो कि वह परिशेष प्रमाणभूत है तो वह प्रत्यक्ष है अथवा अनुमान ? यदि कहो कि प्रत्यक्ष है तो यह बात अयुक्त है, क्योंकि प्रसक्तका प्रतिषेध करनेके द्वारसे किसी अभिमतकी सिद्धि करनेमें प्रत्यक्ष समर्थ नही है। प्रत्यक्ष तो जो सीधे सामने सन्निधानमें हो विधिरूप पदार्थ उसे सिद्ध करता है। अब यह तो तर्कणाओंकी बात है—प्रसक्तका निषेध करे फिर शेष बचे

http://sahjanandvarnishastra.org/

हुएका ज्ञान कराये यह काम प्रयत्नका नही है। यदि कहो कि केवल व्यतिरेकी अनुमान ही विशेष है तब तब तो प्रकृत अनुमान देनेकी जरूरत ही नही रही। क्योंकि प्रकृत अनुमान देनेपर भी अर्थात् जो कहा गया है कि इन तंतुवोंमें पट है इसमें जो इह प्रत्यय हो रहा है वह सम्बन्धका कार्य है अवाध्यमान इह प्रत्ययरूप होनेसे तो यह अनुमान दे दिया जिसपर भी यह अनुमान सिद्धि तो कुछ नही कर पा रहा। जब परिशेषकी बात आयगी तब कुछ बात बने। परिशेषके बिना इष्ट साध्यकी सिद्धि तो इस अनुमानसे न हो सकी। यदि कहो कि प्रमाणान्तरके बिना परिशेष भी तो साध्य की सिद्धि नही कर सकता अर्थात् अन्तमें समवायकी सिद्धि हुई परिशेषसे। लेकिन यह परिशेष केवल स्वयं साध्यकी सिद्धि नही कर सकता। प्रकृत अनुमान जो दिया है उस प्रमाणान्तरके बिना परिशेष साध्यकी सिद्धि करनेमें समर्थ नही है। तब तो इसमें अन्योन्याश्रय दोष हो गया। जब प्रकृतमें अनुमान साध्य सिद्ध करलें तब परिशेष न्याय बने जब परिशेष अनुमान बने तो प्रकृत अनुमान साध्य सिद्ध करनेमें समर्थ बने। यदि यह कहो कि प्रमाणान्तरके बिना भी परिशेष साध्यकी सिद्धि करनेमें समर्थ है तब तो यह इस परिशेष अनुमानको ही कहियेगा। फिर जो यह अनुमान बनाया गया प्रकृत अनुमान—तंतुवोंमें पट है, इत्यादि इह प्रत्ययसे समवायकी सिद्धिका जो अनुमान बनाया गया फिर तो वह न कहना चाहिये। इस प्रकार समवाय किसी तरह सिद्ध नही हो सकता। और जब समवाय सिद्ध नही है तब फिर इह इदं यह ज्ञान समवायका आलम्बन करता है, यह कहना अयुक्त है। 'इह' यह ज्ञान समवाय का आलम्बन नही करता।

इहेदं प्रत्ययको समवायहेतुक माननेके प्रसंगमें एक अन्य प्रश्नोत्तर—शंकाकार कहता है कि आपका कहना सत्य है। हम ऐसा कब कहते हैं कि "इह इदं" यह ज्ञान मात्र समवायका आलम्बन करता है। वह ज्ञान तो विशिष्ट आधारको विषय करता है। तंतुवोंमें पट है इसमें जो यह प्रत्यय हो रहा है वह केवल समवायका आलम्बन नही कर रहा किन्तु समवाय विशिष्ट तंतु और पटका आलम्बन कर रहा है। तंतु और पटमें जो विशिष्टता है उसीको ही सम्बन्ध कहते हैं। और, वही समवाय सम्बन्ध है। और देखिये किसी भी प्रकार यदि इह प्रत्ययको समवाय हेतुक न माना जायगा तो "इह इदं यह ज्ञान निर्हेतुक बन जायगा और निर्हेतुक बननेसे फिर यह ज्ञान कादाचित्क न रहेगा, शाश्वत हो जायगा, पर 'इहेदं' ज्ञान शाश्वत कहाँ है। इससे सिद्ध है कि समवायके कारण "इहेदं" ज्ञान हो रहा है और वह इस प्रकार समवायका आलम्बन करता है। अब उक्त शंकाका समाधान करते हैं। तंतुवोंमें पट है इस प्रकारके ज्ञानसे जो सम्बन्ध तादात्म्य माना गया है इसके लिए जो अनुमान बनाया है कि 'इह' यह प्रत्यय सम्बन्धका कार्य है सो ठीक है, वह तादात्म्यका कार्य है, और, तादात्म्यका अर्थ है—तंतुस्वभावता याने जैसे तंतुस्वभावता है पटमें। पट और तंतुमें ये दो भिन्न पदार्थ हों और फिर उनका सम्बन्ध बनाया जाय ऐसी बात

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं है, किन्तु तंतु ही अपनी पूर्व अवस्थाको त्यागकर एक आ न वितानभूत पर्याय में आया है उस ही का नाम पट है। समवाय नामका कोई सम्बन्ध नहीं है।

इहेदं प्रत्ययको महेश्वरहेतुक मान डालनेका प्रत्याक्षेप—विशेषवादमें एक सिद्धान्त माना गया है कि जो जो भी कार्य हैं वे सब महेश्वरकृत हैं याने समस्त कार्य म श्वर हेतुक हैं। तो बजाय समवायके यही कल्पना कर लो कि इह इदं ऐसा जो ज्ञान हुआ है वह भी महेश्वरका कार्य है। जब कुछ असंगत ही कल्पना करना है तो एक बार जो अपनी कल्पना करली उस हीकी बातोंको जोड़ते जाइये। नवीन-नवीन कल्पनायें करनेका श्रम क्यों किया जा रहा है? और, महेश्वर हेतुक हो जानेसे इह इद ज्ञान कादाचित्क भी रहेगा। उसकी अनित्यतामें विरोध भी न आयगा। यदि कहो इह इदका जो ज्ञान है वह महेश्वर हेतुक नही है तब फिर आपके इसीसे ही कर्मत्वात् इस हेतुका व्यभिचार आ गया। आपका अनुमान था कि जो जो भी पदार्थ हैं वे सब महेश्वर निमित्तक हैं कार्य होनेसे। अब देखिये! कार्य तो "इह इदं" भी है लेकिन महेश्वर हेतुक नही मान रहे तो साधन पाया गया और साध्य स्वीकार नही करते तो अनैकान्तिक दोष ही आया। शंकाकार कहता है कि महेश्वर कोई सम्बन्धरूप नहीं है। महेश्वर तो महेश्वर है, सम्बन्धपना न होनेके कारण महेश्वर कैसे सम्बन्ध बुद्धिका कारण बन जायगा? इस कुण्डमें दधि है अथवा इन तंतुवोंमें पट है, इस प्रकारको जो सम्बन्ध बुद्धि बन रही है उसका कारण तो सम्बन्ध ही कोई हो सकता है। महेश्वर सम्बन्धका कारण नही। समाधानमें कहते हैं कि क्या हो गया? प्रभुकी शक्ति तो अचिन्त्य मानी ही गई है। जो ईश्वर तीन लोकका कार्य करनेमें समर्थ है वह पटमें रूपादिक है, तंतुवोंमें पट है, कुण्डमें दधि है, इस प्रकारकी बुद्धियोंको न पैदा कर सकेगा क्या? लोगोंके चित्तमें जो इह इदं ज्ञान बन रहा है उस ज्ञानको ईश्वर ही करदे। प्रभु तो जो चाहता है उस उस सबको कर देता है। अगर न करे तो उसकी प्रभुता समाप्त हो जायगी। फिर क्या वह प्रभु रहा कि जो चाहे सो न कर सके। ऐसे ही संसारी जीव है। शंकाकार कहता है कि इस कुण्डमें दधि है, आदिक ज्ञानमें जैसे सम्बन्ध पूर्वकताकी उपलब्धि है अर्थात् यह साफ दिख रहा है कि मटकेमें दधि रखा है और वह संयोग सम्बन्धसे रखा हुआ है तो जैसे कुण्डदधिके इह इदं प्रत्ययमें सम्बन्ध पूर्वकता पायी जाती है इसी प्रकार तंतुवोंमें पट है यहांके भी इह प्रत्ययमें सम्बन्ध पूर्वकता बन जायगी। कहते हैं कि यह भी नहीं कह सकते, क्योंकि इन तंतुवोंमें पट है ऐसे ज्ञानमें भी हम ईश्वर हेतुकता कह देंगे, क्योंकि कार्य तो है ही और फिर यह भी विरोध नहीं आता कि महेश्वर हेतुक होनेपर वह कहीं अनित्य न रहेगा। और फिर देखो जो दृष्टान्तमें दे रहे हो संयोगकी बात कि इस कुण्डमें दधि है। जैसे इस ज्ञानका कारण संयोग सम्बन्ध है तो संयोग सम्बन्ध भी वास्तविक चीज नहीं है। संयोग नामका कोई भिन्न पदार्थ हो और वह पदार्थमें लगता फिरे इससे पदार्थ संयुक्त कहलाये, यह बात सिद्ध नहीं होती।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संयोग पदार्थ न माननेपर शंकाकार द्वारा आपत्ति प्रदर्शन—शंकाकार कहता है कि यदि संयोग नामका कोई भिन्न पदार्थ स्वतंत्र न माना जाय तब तो बड़ी गड़बड़ियाँ हो जायेंगी देखो – खेतमें बीज डालते हैं तो बीज तो वही है। संयोग नामकी कोई चीज तुमने मानी नहीं तो वही बीज अपने घरमें रखे हैं तो उनमें भी क्यों नहीं अंकुर फूट निकलते ? जैसे—खेतमें बीज पहुँचनेपर उनमें अंकुर फूटते हैं, पौधे बनते हैं तो कारण क्या है ? वहां संयोग बन गया खेतका और बीजका। पौधा होनेके लिए, अंकुर होनेके लिए जो जो भी चीजें चाहिएँ उन सबका संयोग हो गया। लेकिन संयोगको तुम मानते नहीं तो फिर सभी जगहके बीजोंमें अंकुर उत्पन्न हो जाने चाहियें क्योंकि संयोग न माननेपर जैसी साधारणता खेतमें पड़े हुए बीजोंकी है ऐसी ही साधारणता घरमें रखे हुए बीजोंकी है। इस कारण संयोग नामका पदार्थ तो मानना ही होगा। संयोग मान लेनेपर यह व्यवस्था बन जाती है कि जहां संयोग है वहाँ संयोग है वहाँ संयोगजन्य कार्य होता है जहाँ संयोग नहीं वहाँ संयोगजन्य कार्य नहीं होता। समाधानमें कहते हैं कि ऐसा कहना भी असंगत है कि वे बीज निर्विशिष्ट हो गए, सबकी ही तरह हैं खेतमें पड़े हुए भी, घरमें रखे हुए भी। उन बीजोंकी क्या विशेषता है ? बीज तो ज्योंके त्यों हैं। तो वे सब बीज निर्विशिष्ट होनेके कारण सदा ही अंकुरोंको पैदा करदें, यह जो आपत्ति दी वह अयुक्त है, क्योंकि बीजोंमें निर्विशेषता सिद्ध है। खेतमें पड़े हुए बीज और घरमें रखे हुए बीज दोनों एक समानकी स्थितिके नहीं हैं। समस्त पदार्थ परिणमनशील हुआ करते हैं। तो खेतोंमें पड़े हुए बीज विशिष्ट परिणाम करके युक्त हैं, उनमें विशिष्ट परिणामता क्या है कि वे खेत, खाद जलादिक के अन्तरसे नहीं पड़े हुए हैं और उनमें उस प्रकारकी योग्यता आई है, उन बीजोंमें अंकुर आदिक उत्पन्न करनेकी बात सही है और घरमें रखे हुए बीजोंमें वह विशिष्ट परिणाम नहीं आया है इस कारण वे अंकुर आदिकको उत्पन्न नहीं करते हैं।

शंकाकार द्वारा सर्वदा कार्यानारम्भ हेतुसे निमित्त सन्निधान—शंकाकार कहता है कि केवल कहने भरसे क्या है देखिये ! हमारे पक्षका अनुमान भी प्रबल है। वे बीज अंकुर आदिक कार्योंको उत्पन्न करनेमें अन्य कारणकी अपेक्षा रखते हैं क्योंकि सर्वदा कार्य न होनेसे। उन बीजोंमें सर्वदा तो अंकुर आदिक उत्पन्न होनेका कार्य नहीं होता। जहाँ जहाँ सर्वदा कार्य नहीं होते देखा गया है वहां यह मानना पड़ेगा कि वहां वह अपना काम करनेमें अन्य कारणोंकी अपेक्षा रखता है। जैसे मृत्पिण्ड घटके बनानेमें दंड, चक्र कुम्हार आदिककी अपेक्षा रखता है। अगर वे सब साधन यों ही पड़े रहें तो घट तो नहीं बन जाता। कुम्हार जब अपने हस्तादिक क्रियाओंका व्यापार करता है तो उस निमित्त सन्निधानमें वह मृत्पिण्ड घटादिकके करनेमें समर्थ हो जाता है। तो जैसे मृत्पिण्ड आदिक घटके करनेमें कुम्हार आदिक की अपेक्षा रखते हैं इसी प्रकार ये बीज भी अंकुर आदिकके कार्यकी उत्पत्तिमें अन्य कारणकी अपेक्षा रखते हैं क्योंकि बीजोंमें सर्वदा अंकुर आदिक कार्य नहीं पाये जाते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और वे बीज जिन अन्य कारणोंकी अपेक्षा रखते हैं वे अन्य कारण हैं संयोग । इस प्रकार संयोग नामक गुण पदार्थकी सिद्धि बराबर है।

कार्यानारम्भ हेतुसे कारणमात्र सापेक्षता माननेपर सिद्धसाध्यता— उक्त आरेकाका उत्तर कहते हैं शंकाकारने जो यह कहा कि सर्वदा कार्य न होनेसे वे बीज अंकुर आदिक कार्योंकी उत्पत्तिमें कारणान्तरकी अपेक्षा रखते हैं सो इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट बताओ कि वे बीज कारणमात्रकी अपेक्षा रखते हैं यह बात आप सिद्ध कर रहे हैं या किसी संयोग नामक पदार्थान्तरकी, कारण विशेषकी अपेक्षा रखते हैं यह आप सिद्ध करना चाहते हैं ? यदि कारणमात्रकी अपेक्षा रखते हैं यह आप सिद्ध करना चाह रहे हैं तो इसमें कोई आपत्तिकी बात नहीं। सभी लोग यह मानते हैं कि विशिष्ट परिणामकी अपेक्षा रखने वाले उन बीजोंमें अपने अंकुरके करनेकी बात आ जाती है तब जो बीजोंका जैसा जहां सन्निधान होना योग्य है और उन बीजोंमें शीत उष्ण आदिकका जब परिणमन होता है उस समयमें उसमें अंकुर आदिक उत्पन्न होते हैं। तो बीजोंने विशिष्ट परिणामकी अपेक्षा रखी सो कारण मात्रकी अपेक्षा रखते हैं इस सिद्धमें कोई आपत्ति नहीं।

कार्यानारम्भ हेतुसे अभिमतसंयोगनामक पदार्थान्तरसापेक्षता साध्य माननेपर आपत्तियां— यदि यह कहो कि हम तो कारण विशेषकी अपेक्षा बतला रहे हैं और वह कारण विशेष है तुम्हारा माना हुआ संयोग नामका पदार्थ। सो हमारे अभिमत संयोग नामक पदार्थान्तरकी अपेक्षा रखते हैं, बीज आदिक ये सिद्ध कर रहे हैं। तो उत्तरमें कहते हैं कि जब यह कहा कि देवदत्त अकुण्डली है, जब कोई पुरुष कुण्डल पहिने हुए हैं तो उसको कुण्डली कहते हैं और जब कुण्डल रहित है तब वह अकुण्डली है। तो देवदत्त अकुण्डली है इस प्रकारका जो वाक्य बोला जाता है इस ज्ञानमें देखो —आपके हेतुका अविनाभाव नहीं पाया जा रहा है इसलिये अनैकान्तिकताका दोष आता है। क्योंकि अब यहां देखो - सम्बन्धके बिना भी एक यह ज्ञान बन गया और फिर जो दृष्टान्त दिया गया है वह भी साध्यविकल दृष्टान्त है। मृत्पिण्ड आदिक कुम्हारकी अपेक्षा रखकर घटकार्य करनेमें समर्थ होते हैं तो भी यह कुम्भकार संयोग स्वरूप तो नहीं है। आप इस अनुमानको करके संयोग पदार्थकी सिद्धि करना चाहते। लेकिन दृष्टान्त जो दिया है उसमें कुम्भकारकी अपेक्षा हुई। इतना ही सिद्ध होता है, संयोगकी बात नहीं सिद्ध हुई। और, साथ ही यह भी दोष है कि यदि वे बीज संयोगमात्रकी अपेक्षा रखकर ही अंकुरको उत्पन्न कर देते हैं तो जब वे बीज जिस ही प्रहरमें डाले गए उस ही प्रहरमें उनसे अंकुर आदिक क्यों नहीं उत्पन्न हो जाते ? क्योंकि बीज संयोगकी अपेक्षा रखकर अंकुरको उत्पन्न करने वाले कहे गए हैं। तो बीजोंको खेतमें डालते ही उनमें तुरन्त अंकुर आ जाने चाहिये, क्योंकि सारे कारण तो जुटा दिए गए। खाद, मिट्टी, पानी आदिक सभी साधनों का संयोग कर दिया गया है। अब संयोग नामका पदार्थ उन बीजोंसे तुरन्त ही

http://sahjanandvarnishastra.org/

अंकुरोंको क्यों नही उत्पन्न कर देता ? और, संयोग होते ही पहिले ही दिन जब अंकुर नही उत्पन्न हो पा रहे तो पीछे भी अंकुर मत उत्पन्न हो, क्योंकि संयोगकी बात जब भी थी अब भी है। संयोग होनेपर कार्य नही हो सक रहा, तब पीछे भी कार्य न होवे।

बीजमें अंकुरोत्पादिनी योग्यता आनेपर अंकुरोत्पत्ति माननेपर सिद्धान्तकी सुस्थता—यदि यह कहोगे कि संयोग होनेके बाद जब बीजमें उस प्रकार की योग्यता आती है तब उनमेंसे अंकुरोंकी उत्पत्ति होती है। तब तो यह बात हुई ना कि बीजोंमें जब उस प्रकारका विशेष परिणाम आता है तब अंकुरोंकी उत्पत्ति होती है। तो विशिष्ट परिणामकी अपेक्षा रखकर बीज अंकुरको उत्पन्न कर दें इसमें कोई अयुक्त बात नही है, लेकिन दुनियामें एक संयोग नामका पदार्थ है और वह पदार्थ बीज आदिकमें अंकुर आदिक कार्योंको उत्पन्न कर दिया करे यह बात अयुक्त होती है। तो जैसे संयोग नामक पदार्थान्तर भी कुछ नही है इसी प्रकार समवाय नामक पदार्थान्तर भी कुछ नही हैं। तब यह सिद्ध हुआ कि सब पदार्थ हैं तो गुण पर्यायमें हैं। उनकी इन विशेषताओंको निरखते हैं तो गुण और पर्याय रूपसे बोध होता है। समवाय नाम का कोई पदार्थ नही है।

द्रव्योंके विशेषणभावके कारण संयोगकी अध्यक्षसे प्रतीति होनेकी आरेका और उसका समाधान—शंकाकार कहता है कि संयोगवान द्रव्योंमें विशेषणभावके कारण अध्यक्ष प्रमाणसे ही यह संयोग जान लिया जाता है, वह इस प्रकार है कि जैसे किसी मनुष्यसे किसी मनुष्यने कहा कि संयुक्त द्रव्यको लावो तो ऐसा कहनेपर जिन ही द्रव्योंमें संयोग पाया गया है उन ही को लाता है, द्रव्य मात्र को नहीं लाता। जैसे किसीने कहा कि ताला सहित संदूक लावो, तो न केवल ताला लायगा न संदूक लायगा किन्तु ताला और संदूकका जिसमें संयोग पाया जा रहा है उस संयुक्त द्रव्यको लायगा। तो इससे सिद्ध है कि संयोगका भी प्रत्यक्ष हो रहा है। अन्यथा जिसको कहा कि ताला संयुक्त संदूक लावो तो वह केवल ताला या केवल संदूक ही क्यों लाता ? ताला और संदूक जैसे प्रत्यक्ष सिद्ध हैं इसी प्रकार उसकी दृष्टिमें उनका संयोग भी प्रत्यक्ष सिद्ध है तब संयोग नामका पदार्थ कैसे न रहा ? समाधानमें कहते हैं कि जो यह कहा शंकाकारने कि दो द्रव्योंके विशेषणभावके कारण अध्यक्षसे ही संयोग जान लिया जाता है यह बात अयुक्त है, क्योंकि द्रव्योंसे भिन्न संयोग कुछ भी ज्ञानीके प्रत्यक्षमें नही आ रहा ? जिससे कि संयोगके देखनेसे वह विशिष्ट द्रव्य को लाये। दृष्टान्तमें ताला संयुक्त संदूकको लाया तो वहाँ ज्ञानीकी दृष्टिमें संयोग नही आया, तब क्या आया ? वे दोनों द्रव्य ही आये। और, किस प्रकारके वे दोनों द्रव्य आये कि पहिले तो था अन्तर सहित अवस्थामें, ताला कहीं था, संदूक कहीं रखी थी, तो अन्तर सहित अवस्थाका परित्याग करके अन्तर रहित अवस्थारूपसे उत्पन्न, निष्पन्न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उन दोनों द्रव्योंको संयुक्त शब्दसे कहा जाता है। संयोग नामक कोई उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्त स्वतंत्र पदार्थ कहीं रहता हो और उसका सम्बन्ध होनेपर फिर पदार्थ संयुक्त कहलाता हो ऐसी बात नही। वह पदार्थ ही स्वयं अन्तर सहित अवस्थाके त्याग से जो अन्तर रहित अवस्थामें आया है बस ऐसी अवस्था युक्त द्रव्यको संयुक्त द्रव्य कहते हैं, क्योंकि संयोग शब्द अवस्था विशेषमें उच्चरित किया जाता है। किसीने कहा संयोग, तो सुनने वालेके चित्तमें पदार्थोंकी अवस्था विशेष ज्ञानमें आ जाती है। तो इस कारण जहाँपर उस प्रकारकी वस्तु जो कि संयोग शब्दके विषयभेदसे प्राप्त हुई है उसे देखता है तो उसको ही लाता है अन्यको नही। जैसे–जिसने कहा कि ताला सहित संदूक लावो तो जैसा वह ताला वाला संदूक दिखता है ताला और संदूकका अन्तर नही रहा, ऐसा उन दोनों पदार्थोंको देखता है तो उन दोनोंको ला देता है, अन्यको नही लाता। इसमें संयोग नामक अलग पदार्थकी बात कहाँ रही?

शंकाकार द्वारा संयोगके कारण ही संयुक्त बुद्धिकी निष्पत्तिका कथन– शंकाकार कहता है कि जैसे यह बुद्धि उत्पन्न होती है देवदत्त कुण्डली है, कुण्डल पहिने था तो उसके सम्बन्धमें जो यह बुद्धि उत्पन्न हुई, देवदत्त कुण्डली है तो यह बतलावो कि ऐसी बुद्धि किस कारणसे हुई है? केवल पुरुषके कारणसे यह बुद्धि नही हुई क्यों कि पुरुष तो सदा विद्यमान रहता है, अर्थात् कुण्डल और पुरुषके संयोगसे पहिले भी रह रहा था, इसका संयोग विघट जाय उसके बाद भी रह लेगा तो केवल पुरुषके कारण यह बुद्धि हुई होती तो इस बुद्धिको भी सर्वदा रहना चाहिये था। सो सर्वदा यह सम्बन्ध बुद्धि है नहीं सो केवल पुरुषके कारण कुण्डली देवदत्त, इस प्रकारकी बुद्धि नहीं हुई है। केवल कुण्डली मात्रके कारण भी 'कुण्डली देवदत्तः" इस प्रकारकी बुद्धि नही होती, क्योंकि कुण्डल उस संयोगसे पहिले अलग पड़ा रहता है और संयोग मिटने के बाद भी कुण्डल अलग पड़ा रहेगा तो ये दोनों केवल चिरकाल रहते हैं यदि उन पदार्थोंके कारण देवदत्त कुण्डली है इस प्रकारकी बुद्धि बनती तो यह बुद्धि सदा रहना चाहिये, किन्तु ऐसा है नहीं। इससे सिद्ध है कि कुण्डलके कारण देवदत्त कुण्डल है इस प्रकारकी बुद्धि उत्पन्न नही होती। तब फिर समझ लीजिए ! अपने आपके उस निरन्तरावस्था सम्पन्न उन दोनोंके कारण यह बुद्धि उत्पन्न हुई है कि देवदत्त कुण्डली है।

संयोगकी विधिनिषेधके व्यवहार द्वारा संयोगको उपलब्ध सत्त्व सिद्ध करनेका शंकाकारका वक्तव्य– और, भी समझिये ! जो ही वस्तु किसीके द्वारा कहीं पर उपलब्ध सत्त्व हुई है उसकी ही अन्य जगह विधि प्रतिषेधरूपमेंसे लोकव्ययहारकी प्रवृत्ति देखी जाती है। किसी भी चीजका निषेध तब किया जा सकता है और विधान भी तब किया जा सकता है जब किसीका किसी जगह उपलब्धसत्त्व नजर आया हो। अर्थात् वह है इस प्रकारसे किसीको कभी देखा हो, उसके ही बारेमें तो विधि और निषेधके व्यवहारकी प्रवृत्ति बनेगी। यदि मान लें कि संयोग कभी भी उपलब्ध नही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होता तो फिर उसकी विधि निषेधका व्यवहार कैसे बनेगा ? देवदत्त कुण्डली है, अथवा यह देवदत्त पहिले अकुण्डली था और अब कुण्डली हुआ अथवा देवदत्त कुण्डली था और अब अकुण्डली बन गया है तो देखिये-संयोगके विधानकी बात, संयोगके निषेधकी बात जो व्यवहारमें कही जा रही है उससे भी यह सिद्ध होता है कि संयोग नामक पदार्थ अवश्य है, और, कभी किसीने देखा ही है तभी तो उसके बारेमें विधि और निषेधका व्यवहार किया जा रहा है। जब कहा कि देवदत्त कुण्डली है तो इस कहनेमें किसका निषेध किया गया ? देवदत्तका निषेध नहीं किया गया, कुण्डलका भी निषेध नहीं किया गया, क्योंकि कुण्डल तो सत् है, उसका निषेध कहाँ कर सकते हैं ? चाहे देवदत्तसे भिड़ा हुआ रहे चाहे अलग कुछ भी हो। कुण्डलकी दशा वह तो सत् है। उसका तो प्रतिषेध किया नहीं जा सकता, इसी प्रकार देवदत्तका भी प्रतिषेध नहीं हो सकता। चाहे वह कुण्डल पहिने हो अथवा न पहिने हो वह तो सदा ही है, तो इन दोनोंका निषेध नहीं किया गया है। देवदत्त कुण्डली है यह कह कह फिर किसका निषेध किया जायगा ? तो देखो ! जिसका निषेध किया जायगा वह भी तो कोई सत् है। तो संयोग सत् सिद्ध हो गया। और, जब कहा जायगा कि देवदत्त कुण्डली है तो यहाँ विधिका वचन बोला गया है, कोई बात बतायी गई है, तो इस विधि वाक्यमें भी न तो देवदत्तकी विधि बतायी गई है क्योंकि वह तो सिद्ध ही है। उनके बतानेका क्या प्रसंग है ? जब परिशेषन्यायसे यह सिद्ध हुआ कि संयोगकी ही विधि कही गई है तब यह सिद्ध हुआ ना कि जो बात किसीके द्वारा कभी सत्त्वरूपसे देखी गई है उस ही चीजका किसी जगह किसी समय विधान करनेका व्यवहार किया जाता है। तो संयोगका जो विधान और निषेध करनेका व्यवहार देखा जा रहा है उससे सिद्ध है कि संयोग नामक पदार्थ वास्तविक उपलब्ध सत्त्व है।

संयोगसद्भाव सन्देहक प्रथम अनुमानका निराकरण— उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि कुण्डली देवदत्त है आदिक कहकर इस बुद्धिका कारणभूत, संयोग बताया गया वह भी कथन कथनमात्र है, क्योंकि जिस प्रकार देवदत्त और कुण्डलीमें विशिष्ट अवस्थाओंकी प्राप्तिरूप संयोग सदा नहीं होता है उसी प्रकार 'देवदत्त कुण्डली" इस प्रकारकी बुद्धि भी सदा नहीं होती, क्योंकि वह बुद्धि भी अवस्था विशेष कारणक है वह भी कैसे उस अवस्था विशेषके अभावमें हो सकती है ? और भी ! सुनिये कुण्डली देवदत्त है इस प्रकारकी जो बुद्धि उत्पन्न हुई है वह सान्तर अवस्थाका त्याग करके अन्तररहित अवस्थामें आये हुए देवदत्त और कुण्डल इन दोनोंको देख करके कहा गया है। कहीं संयोग नामका अलग पदार्थ हो और उसके कारण देवदत्त कुण्डली है इस प्रकारकी बुद्धि की जाय सो बात नहीं है। वे दोनों ही पदार्थ जब अन्तररहित रूपसे देखे गए तो यह व्यवहार चलता है कि देवदत्त कुण्डली है।

संयोगपदार्थ सद्भावसंदेहक द्वितीय अनुमानका निराकरण—अब शंका-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विधि और प्रतिषेधरूप व्यवहार
कारने दूसरी बात जो यह कही है कि जब संयोगका, विधि और प्रतिषेधरूप व्यवहार उपलब्ध सत्त्व होता
पाया जाता है तो उससे सिद्ध है कि संयोग कहीं न कहीं किसीको उपलब्ध सत्त्व होता
ही है। सो वहां भी यह समझिये कि जो विधि प्रतिषेध किया गया है देवदत्त कुण्डली
है, यह कहकर जो विधि की गई है देवदत्त अकुण्डली है यह कहकर जो निषेध किया
गया है सो वह विधि प्रतिषेध भी केवल देवदत्तमें या कुण्डलका नहीं किया गया है, वहाँ
भी अवस्था विशेषका ही विधान और निषेध किया गया है। इस कारण यह दोष
नहीं दे सकते कि देखो ! न तो केवल देवदत्तका विधान है न केवल कुण्डलका विधान
है तो परिशेषन्यायसे संयोगका विधान रहा। इसी तरह देवदत्त अकुण्डली है, ऐसा
कहकर यह नहीं कह सकते कि यहां न देवदत्तका निषेध है, न कुण्डलका निषेध है,
किन्तु संयोगका निषेध है। संयोग नामक कोई पदार्थ नहीं, अवस्था विशेष परिणत
देवदत्त व कुण्डलका ही विधान है और अवस्थाविशेषपरिणत अथवा उस विशिष्ट दशा
से अपरिणत देवदत्त कुण्डलका ही निषेध है। जब अन्तर सहित अवस्थामें देवदत्त और
कुण्डल था तब तो अंतररहित अवस्थाके रूपसे उनका निषेध किया गया है और ऐसा
विधान भी है जब देवदत्त और कुण्डल अन्तररहित अवस्थामें आये तो अन्तर सहित अव-
स्था विशेष परिणत वस्तुका ही विधान और निषेध किया जाता है। अब इसी
कारण यह सिद्ध हुआ कि अनेक वस्तुवोंके सन्निकर्ष होनेपर जो ज्ञान उत्पन्न होता है
वह विशेषवाद परिकल्पित संयोगविषयक नहीं है क्योंकि संयोग नामका कोई पदार्थ
नही। वहाँ उस–उस अवस्थासे युक्त वस्तुओंका ही विधान और निषेध किया गया है,
जैसे कि विरले अलग–अलगरूपसे अवस्थित अनेक तंतु विषयक ज्ञान हुआ करते हैं
इसी प्रकार संयुक्त प्रत्यय भी विरल अवस्थाको छोड़कर अन्तर रहित अवस्थामें आये
हुए अनेक तंतुवोंके विषयमें होता है। इससे यह सिद्ध है कि न तो इन्द्रियज ज्ञानके
प्रसंगमें, सन्निकर्षकी बातचीतके संदर्भमें संयोग नामक पदार्थ है और न यह देवदत्त
कुण्डली है अकुण्डली है आदिक व्यवहारके सन्दर्भमें भी संयोग नामक कोई पदार्थ है।
विशिष्ट अवस्थासे युक्त पदार्थोंका ही व्यवहार चलता है।

विशेषविरुद्धाअनुमान द्वारा समवाय पदार्थकी असिद्धि—और, भी
देखिये ! शंकाकारने जो यह अनुमान बनाया था कि "इह इदं" यह ज्ञान सम्बंधका
कार्य है, याने समवायपूर्वक नही है क्योंकि अवाधित "इह ज्ञान" होनेसे। यह अनुमान
तो विशेष विरुद्ध अनुमानसे बाधित है। यह भी तो कहा जा सकता है कि विवादा-
स्पद "इह इदं" यह ज्ञान समवाय पूर्वक नहीं है क्योंकि अवाधित यह ज्ञान रूप होने
से। जैसे कि कुण्डमें दधि इह प्रकारका ज्ञान। कुण्डमें दधि इस ज्ञानमें भी तो इह इदं
की मुद्रा लगी है, और देखो ! वह ज्ञान समवायपूर्वक नही है, तो इसी प्रकार तंतुवों
में पट है आदिकमें भी जो इह इदं ज्ञान है वह भी समवायपूर्वक नहीं है। तो इस
प्रकार यह विशेष विरुद्ध अनुमान होता है जिससे समवायकी सिद्धि नही होती है।
विशेष विरुद्ध अनुमानका अर्थ यह है कि तुम सिद्ध करना चाहते थे इहेदं प्रत्ययको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विशेषण समवायपूर्वक और इस ही हेतुसे सिद्ध होता है समवायपूर्वक। यद्यपि अनुमानमें स्पष्ट शब्द यह न था कि समवायपूर्वक, था यह कि सम्बंधका कार्य है, पर प्रयोजन तो यह था कि समवायपूर्वक होता है सो अब देखो ! विशेषण समवायपूर्वकपनेके विरुद्ध यहाँ इसमें समवायपूर्वक सिद्ध किया जा रहा है और हेतु वही का वही है।

विशेष विरुद्धानुमान द्वारा सकलानुमानोच्छेदनकी शंका —शंकाकार कहता है कि उक्त प्रकारसे विशेषविरुद्ध अनुमान बनाना तो समस्त अनुमानोंका नष्ट करने वाला हो जायगा। सो जो सही अनुमान भी हैं वे भी सिद्ध न हो सकेंगे। जैसे अनुमान किया कि पर्वत अग्नि वाला है धूम वाला होनेसे। अनुमान सब है लेकिन हम इसका उच्छेद कर देंगे। एक अनुमान इस तरह भी हम बोल सकेंगे कि पर्वत रहने वाली अग्निसे अग्निमान नहीं है धूमवान होनेसे रसोईघरकी तरह। जैसे रसोईघरमें हेतु धूमवान तो पाया गया पर पर्वतमें रहने वाली अग्निसे अग्निमान होना नहीं पाया गया तो यों विशेष विरुद्धानुमानकी पद्धति समस्त अनुमानोंका उच्छेदक हो जायगी। तब अनुमानवादियोंको तो ऐसी बात कमसे कम न कहनी चाहिये।

विशेषविरुद्धानुमानको सफलानुमानोच्छेदक कहनेकी शंकाका समाधान —अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि जो यह कहा कि विशेष विरुद्ध अनुमान समस्त अनुमानोंका उच्छेदक हो जायगा इसलिए विशेष विरुद्ध अनुमानकी बात ही न करना चाहिए। तो जरा यह बतलाओ कि विशेषविरुद्ध अनुमान क्यों न कहना चाहिये ? क्या अनुमानाभासका उच्छेदक है इस कारण न कहना चाहिये या सच्चे अनुमानका उच्छेदक है इस कारण न कहना चाहिये ? यदि कहो कि अनुमानाभासका उच्छेदक होनेके कारण विशेषविरुद्धानुमान न कहा जाना चाहिए तो यह बात कैसे अयुक्त कह रहे हो ? भला किसी अनुमानका उच्छेद प्रत्यक्ष आदिकके द्वारा भी हो रहा हो, जिस अनुमानमें हेतु कालात्ययापदिष्ट प्रत्यक्षबाधित आदिक दोषोंसे दूषित हो रहा हो उस अनुमानका भी उच्छेदक कोई प्रमाण न कहे तो यह कैसे युक्त हो पाता है ? इस तरहकी अनीतिसे तो अतिप्रसंग आ जायगा। जैसे कालात्ययापदिष्ट हेत्वाभास उच्छेदके योग्य है अनुमानाभासका खण्डन कर देनेके योग्य है और अब आप उस पर कुछ जबान ही नहीं चलाना चाहते। तो उसकी तरह प्रत्यक्ष आदिकका भी उच्छेद होनेका प्रसंग आ जायगा। किसीने कुछ अनुमान कहा और वह बिल्कुल झूठ है, प्रत्यक्षबाधित है और उसपर कुछ बोलनेकी इजाजत न रखे, चुप रहे तो इसका अर्थ यह बन बैठेगा कि जो प्रत्यक्षसिद्ध बात है वह झूठ है और इन अनुमानाभासोंकी बात सत्य है। यों अतिप्रसंग आ जायगा। तो अनुमानाभासका उच्छेद होनेसे विशेष विरुद्ध अनुमान नहीं कहना चाहते, यह बात अयुक्त है। यदि कहो कि सही अनुमानका उच्छेदक होनेसे विरुद्ध अनुमान नहीं कहना चाहिए तो सुनो ? जो सम्यक अनुमान है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उसका खण्डन तो विशेष विरुद्धानुमान हजार भी लगावो तो भी नही हो सकता। उसका कोई खण्डन ही क्या करेगा ?

असिद्धादि अनेक दोषोंसे दूषित अनुमानपर ही विशेषविरुद्धानुमानकी संगतता और, फिर बात एक यह है कि विशेष विरुद्धानुमानकी बात तो शास्त्रोक्त अन्य अनेक दोष आनेके कारण कही गई हैं। विशेष विरुद्धानुमान इतने शब्द सुनकर भी निर्णय कर देना कि इसे न कहना चाहिए, सो यह बात युक्त नही है, जरा कुछ समझो ! "विशेष विरोधक अनुमानपना" इन शब्दोंमें तो आभावके प्रकरणमें कोई बात बताई ही नही गई। जो असिद्ध हो. विरुद्ध हो, अनैकान्तिक हो अनेकों दोषोंसे दूषित हो तभी तो वहाँ विशेष विरुद्धानुमान बनता है। तो असिद्ध अनैकान्तिक विरुद्ध आदिक अनेक दोष बताये ही गए हैं और उसीका स्पष्टीकरण करनेके लिये विशेष विरुद्धानुमानकी बात कही है। सो जो भी अनुमान दुष्ट हो — पक्षाभास, साध्याभास, हेत्वाभास आदिक दोषोंसे दूषित हो उस अनुमानका उच्छेद करनेके लिये तो बात कहना ही चाहिये। पर वह ही अनुमान साध्यकी सिद्धिका घात करता है जो कि दुष्ट हो, दूषित हो उसको न कहना चाहिये, याने विशेषविरुद्धानुमान तो कहना योग्य है, पर जो अनुमान दूषित है उसको न कहना चाहिए। जैसे कोई पुरुष कह बैठे कि यह प्रदेश इस जगहकी अग्निसे अग्निमान नही है धूमवाला होनेसे रसोईघरकी तरह। जैसे रसोई घर धूमवाला है तो वह यहांकी अग्निसे अग्निवाला तो नही। यह अनुमान दूषित है क्योंकि जरा प्रत्यक्षसे आगे चलकर देख लो तो वहांकी रहने वाली अग्निसे अग्निमान प्रदेश पाया जाता है। तो जो प्रत्यक्षसे दूषित है, विरुद्ध है, ऐसा दूषित अनुमान न बोला जाना चाहिए, पर दूषित अनुमानके खिलाफ अनुमान कोई बोले तो वह तो युक्त ही है और वह झूठे अनुमानका उच्छेदक है। जैसे कोई यहींके किसी कमरेमें यह अनुमान लगाये कि यह स्थान यहांकी अग्निसे अग्निमान नही है. धूमवाला होनेसे। तो इसका निर्णय हम तुरन्त ही जाकर कमरा देखकर कर सकते हैं ना, कि देखो ! पाई गई यहांकी अग्निसे अग्निमान यह जगह, पर ऐसी बात समवायमें तो नही लग सकती समवायको सिद्ध करनेका कोई अनुमान बनाया जा रहा हो और उसे कोई न माने तो जाकरके कोई दिखा देवे —देखो ! यह तो है समवाय। समवाय जब प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे सिद्ध ही नही हो रहा तो समवायके निषेध करने वाले अनुमानको प्रत्यक्ष बाधित बताना यह कैसे सम्भव है ? जो जिसका विषय नही है वह उसका बाधक भी नही हो सकता अन्यथा खरगोशके सींग, आकाशके फूल ये सब भी बाधक बन बैठेंगे ? इससे जो विशेष विरुद्धानुमानकी बात कही वह युक्त है. कोई नई बात नही है, जो अनेक दोषोंसे दूषित करके खण्डित कर दिया गया है उसे ही निष्कर्ष रूपमें कहा गया है कि विवादास्पद 'इह इदं' ऐसा यह ज्ञान समवायपूर्वक नही है क्योंकि अबाध्यमान इह प्रत्यय रूप होनेसे।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शङ्काकार द्वारा समवायके एकत्वकी सिद्धि—अब शंकाकार कहता है कि समवाय तो एक है, वह संयोगकी तरह यदि नाना हो तो उसे किसी जगह दिखा भी दें कि देखो यह है समवाय, पर संयोगकी तरह समवायमें नानापन तो है ही नहीं. समवाय एक ही पदार्थ है सर्वगत है, इसमें संयोगकी तरह नानापन नहीं आ सकता, क्योंकि 'इह' इस प्रकारके प्रत्ययकी अविवेकता होनेसे, विशेष लिङ्गका अभाव होनेसे तथा सत् प्रत्ययकी अविशेषता होनेसे भी विशेष लिंगका अभाव होता है। यहाँ दो हेतु दिए गए हैं—इह ऐसा प्रत्यय सर्वत्र होता है, जहाँ–जहाँ समवाय हुआ करता है। तो अब कोई दूसरी बात तो नहीं आई, इह मुद्रा एक ही रही। तो जब इह प्रत्ययकी अविशेषता रही तो विशेष लिंग तो कुछ न रहा, और सत् प्रत्ययकी भी अविशेषता है समवाय स्वयं सत् रूप है, समवायको सत्ताका सम्बन्ध करके सत् नहीं बनाया गया है। द्रव्य, गुण, कर्म ये तीन ही पदार्थ ऐसे हैं जिनमें सत्ताका समवाय करके उन्हें सत् किया गया है। तो देखो समवायमें सत् प्रत्ययके साथ अविशेषता है तो उसमें अब विशेष लिङ्ग नहीं हो सकता और विशेषलिंग हुए बिना नानापनका प्रतिभास नहीं होता। जहाँ भी नानापनका बोध होता है वहाँ विशेष चिन्ह जाना जा रहा है। पर समवायके सम्बन्धमें कोई विशेष लिङ्ग नहीं मिलता इस कारण समवाय एक ही है। जैसे कि सत्तामें सत् प्रत्ययकी अविशेषता है और इसी कारण विशेष लिङ्गका अभाव भी है। तब सत्ता नाना तो न कहलायी। इस अनुमानमें हेतु तो मूलमें एक ही दिया जा रहा है कि समवाय नाना नहीं किन्तु एक है। क्योंकि इसमें विशेषलिंगका अभाव है। जब तुम्हारा भेदक चिन्ह ही नहीं नजर आता समवायके सम्बन्धमें तो वह नाना कैसे हो सकता है। तो विशेष लिंगका अभाव दो कारणोंसे प्रसिद्ध है। एक तो समवायमें "इह" इस तरहका ज्ञान सबमें चल रहा है? कोई ढंग ही दूसरा नहीं है। आत्मामें ज्ञान है, पृथ्वीमें गंध है. जहाँ जहाँ भी समवाय है वहां वहां मुद्रा एक ही है। दूसरी किस्मकी बात ही नहीं है। तो विशेष लिंग कहाँसे हो? और, समवाय स्वयं ही सत् है तो सत् प्रत्ययकी भी समानता है। तो जैसे सत्तामें सत् प्रत्यय की अविशेषता है तो वह नाना नहीं है। इसी प्रकार समवायमें भी सत् प्रत्ययकी अविशेषता है इस कारण कोई विशेष चिन्ह नहीं अतएव समवाय नाना नहीं है।

सम्बन्धत्व हेतुसे समवायके नानात्वकी सिद्धिके अनवकाशका शंकाकार द्वारा कथन—यहाँ कोई यदि यह कहे कि समवायका विशेषलिंग सम्बन्धत्व है और उससे यह सिद्ध हो जायगा कि समवाय नाना है। सम्बन्ध रूप होनेसे संयोग सम्बन्ध रूप है तो नाना है ना, इसी प्रकार समवाय भी सम्बन्धरूप है इस कारण नाना हो जायगा। यह बात यों नहीं कह सकते कि सम्बन्धपनेकी बात तो अन्यथा भी सिद्ध हो जाती है अर्थात् सम्बन्ध होनेके कारण नाना हो यह नियम नहीं है। बल्कि संयोगमें भी जो नानापन विदित होता है वह सम्बन्धत्वके कारण नहीं विदित होता है, संयोगमें नानापनकी सिद्धि सम्बन्धत्वके कारण नहीं की जाती है किन्तु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रत्यक्षसे ही जब भिन्न आश्रयमें समवाय पूर्वक रहने वाले संयोगके क्रमसे उपलब्धि पायी जा रही है तो इस क्रमोपलब्धिसे संयोगका नानापन सिद्ध किया जाता है। तो सम्बन्ध हेतु देकर समवायको नाना सिद्ध करना युक्त नहीं है।

समवायमें अनुगत प्रत्ययकी उपलब्धि होनेसे समवायके एकत्वका शंकाकार द्वारा समर्थन—एक बात यह भी है कि समवायको अनेक माननेपर फिर समवायमें अनुगत प्रत्ययकी उत्पत्ति नहीं हो सकती अर्थात् यहाँ भी समवाय, यहाँ भी समवाय, आत्मामें ज्ञानका है समवाय, वह भी समवाय है। जलमें रूपका भी है, समवाय, वह भी समवाय है। वायुमें स्पर्श है वहाँ भी समवाय है। तो समवायमें जो अनुगत प्रत्यय चल रहा है, सबमें समवाय है ऐसा जो एक अनुगत ज्ञान चल रहा है। यदि समवायको अनेक मान लिया जाय तो यह अनुगत ज्ञान नहीं बन सकता। कोई यह कहे कि देखो! संयोगके अनुगत प्रत्ययकी उत्पत्ति तो हो गयी, यह भी संयोग, नाना संयोगमें संयोगका अनुगत ज्ञान बन जाता है यों ही समवायमें बन जायगा। सो यह बात यों नहीं कह सकते कि संयोगमें तो संयोगत्वके बलपर संयोग नाना होनेपर भी अनुगत ज्ञान बन जाता है याने संयोग तो है नाना, पर सब संयोगमें संयोगत्व धर्म है। तो उस संयोगत्वके समवायसे सब संयोगोंमें अनुगत संयोग, संयोग ऐसे ज्ञानकी उत्पत्ति हो जाती है। जैसे मनुष्य नाना है, पर उन सबमें यह मनुष्य है। यह मनुष्य है। यह मनुष्य है ऐसे मनुष्यत्वके अनुगत ज्ञानकी उत्पत्ति हो जाती है। पर, समवायमें तो यह बात नहीं बनती। इस कारण समवायको अनेक माननेपर यह दोष आता है कि फिर उसमें अनुगत ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती।

शंकाकार द्वारा समवायमें स्वतः एकत्वकी सिद्धि—शंकाकार कह रहा है कि यदि कोई ऐसा संदेह करे कि समवायके नाना होनेपर भी समवायमें भी समवायत्वके बलसे अनुगत प्रत्ययकी उत्पत्ति हो जायगी उस संदेहको दूर करनेके लिये शंकाकार कह रहा है कि यह बात समवायमें सम्भव नहीं है। इसका कारण यह है कि समवायत्वका समवायमें समवायका अभाव है। यदि समवायमें भी समवायत्वका समवाय मान लिया जाय तो अनवस्था दोष होगा फिर उस समवायत्वके समवायके लिये अन्य समवाय मानना होगा। वहाँ भी समवायत्वके समवायमें अन्य समवाय मानना होगा उसके लिए फिर अन्य समवाय मानना होगा। इस तरह कहीं अवस्था न रह सकेगी। यहाँ कोई यह न सोचे कि फिर तो संयोगके लिये भी अपर संयोग पूर्वकता मान लेनेपर अनवस्था हो जाना चाहिए। उनकी अनवस्था क्यों नहीं होती ? बात यों है कि संयोग तो है गुण अतएव संयोगकी वृत्ति द्रव्यमें रहती है और फिर वह संयोग द्रव्यमें रहता है सो समवाय संबन्धसे रहता है और उस संयोगमें संयोगत्व समवेत है इसके लिये संयोगान्तरकी अपेक्षा नहीं रहती।

समवायको एक माननेपर दिये जा सकने वाले द्रव्यत्ववत् गुणत्वकी

http://sahjanandvarnishastra.org/

अभिव्यञ्जकताके दोषका शंकाकार द्वारा निराकरण— यहाँ कोई यह कहे कि जिस समवायसे द्रव्यमें द्रव्यत्व समवेत है, उस ही समवायसे गुणमें गुणत्व भी समवेत है। क्योंकि समवाय तो सारे विश्वमें एक माना गया है। और फिर उससे आत्मामें समवेत द्रव्य द्रव्यत्वका जैसे अभिव्यञ्जक हो जाता है उसी प्रकार द्रव्य गुणत्वका अभिव्यञ्जक क्यों नहीं होता क्योंकि एक समवायमें समवेतपना दोनोंमें बराबर है। अर्थात् द्रव्यमें द्रव्यत्व जिस समवायसे समवेत है उसीसे गुणमें गुणत्व समवेत है क्योंकि समवाय सारे विश्वमें एक ही है। तब फिर जैसे आत्मामें समवेत द्रव्यत्वका द्रव्य अभिव्यञ्जक होता है उसी प्रकार गुणत्वका भी अभिव्यञ्जक क्यों नहीं हो जाता, क्योंकि समवाय तो सारा एक है और उस ही एक समवायसे ये सब समवेत हो रहे हैं। द्रव्यत्वका गुणत्वका सबका समवाय करने वाला पदार्थ तो एक ही है। शंकाकार उत्तर दे रहा है कि यह बात यों नहीं कही जा सकती है कि आधार शक्ति नियामक है। द्रव्यस्वरूप जो आधार शक्ति है वह द्रव्यत्वका नियामक है याने द्रव्यत्वके समवाय होनेसे द्रव्य द्रव्यत्वका अभिव्यञ्जक होगा। द्रव्योंमें द्रव्यत्वके आधारकी शक्ति है और गुणमें गुणत्वादिकके आधारकी शक्ति है। अतएव चूंकि आधार शक्ति जुदी-जुदी है अतएव वह अपने-अपने आधेयकी नियामक हो जाती है। कोई यह भी नहीं कह सकता कि जब समवायमें अनुगत प्रत्यय हो रहा है, सबमें समवाय इस प्रकारका एक सामान्य बोध हो रहा है तो सामान्यसे समवायका अभेद हो जाय यह बात नहीं कही जा सकती। कारण यह है कि सामान्यका और समवाय का लक्षण भिन्न भिन्न है। सामान्यका तो लक्षण है अबाधित अनुगत ज्ञानका जो कारण है वह है सामान्य। और, समवायका लक्षण है—अयुत सिद्ध आधार्य आधारभूत पदार्थोंमें इह इदं ज्ञानका कारणभूत जो भी सम्बन्ध है वह समवाय है। यों सामान्य और समवायका लक्षण भिन्न होनेसे ये दोनों एक नहीं हो सकते। सामान्य नामक पदार्थ भिन्न है और समवाय नामक पदार्थ भिन्न है। यों समवायकी एकता सिद्ध होती है और समवायकी परमार्थ पदार्थता सिद्ध होती है।

अनुमान प्रमाणसे समवायके अनेकत्वकी सिद्धि— अब समाधानमें कहते हैं कि शंकाकारका यह कहना कि समवाय एक है संयोगकी तरह नाना नहीं है, यह कथन गलत है, क्योंकि समवायके एकत्वमें अनुमानसे बाधा आती है। प्रथम तो समवाय नामका कोई पदार्थ नहीं है पर जैसा लक्षण कहा है उसके आधारसे कल्पना भी कर ली जाय समवायकी, तो जो परिकल्पित समवाय है वह अनेक है, एक नहीं है। समवायकी अनेकताको सिद्ध करने वाला यह अनुमान है कि समवाय अनेक हैं, क्योंकि भिन्न-भिन्न देश, काल, आकाररूप पदार्थोंमें सम्बन्ध बुद्धिका कारण होनेसे। जो विभिन्न देश काल आदिकमें सम्बन्ध बुद्धिका कारणभूत होता है वे सब अनेक ही होते हैं। जैसे कि संयोग, देखो! संयोग भिन्न देश, काल, आकाररूप पदार्थोंमें सम्बन्ध बुद्धिका कारणभूत है, अतएव समवाय भी अनेक हैं। समवायकी अनेकता अनेक दृष्टा-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नोंसे प्रसिद्ध है। देखो ! दण्ड और पुरुषका संयोग हो रहा ना, और कहीं चटाई और भींटका संयोग हो रहा है। तो देखो ! दण्ड पुरुषका संयोग दण्ड पुरुषमें है और चटाई भींटका संयोग चटाई भींटमें है तो संयोगमें भेद हुआ कि नहीं ? यह संयोग घना है, यह संयोग शिथिल है, इस तरहके ज्ञानभेदसे संयोगका भेद माननेपर यह समवाय शाश्वत है, यह समवाय कादाचित्क है यों समवायमें भी भेद सिद्ध हो जाता है। जैसे परमाणु और परमाणुके रूपमें समवाय शाश्वत है और तंतु पटमें समवाय कादाचित्क है। तो इस तरहके ज्ञानभेदसे समवायका भी भेद मान लीजिए। यदि कोई कहे कि समवाय भी पदार्थ नित्य है, कोई कादाचित्क है इस कारणसे समवायमें भी नित्यत्व और कादाचित्कत्व ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। तो कहते हैं कि इसी ढंगसे संयोगियों में भी घनापन और शिथिलपन होनेके कारण संयोगमें भी घना और शिथिल संयोग ज्ञानकी उत्पत्ति मान लीजिए ! तब संयोगको स्वयं नाना मत मानो। क्योंकि समवायकी तरह संयोगमें भी संयोगी पदार्थके भेदसे भेद माना जा सकता है। तो यों अगर समवायमें कुछ जोड़ करोगे, समवायमें अपना मंतव्य सिद्ध करनेकी कोशिश करोगे तो संयोगके बारेमें बनी बनाई बात बिगड़ जायगी। एक सूत जोड़ेगे तो दूसरा सूत टूट जायगा।

अन्य अनुमान प्रमाणसे भी समवायके नानात्वकी सिद्धि—और भी देखिये ! इस तरह भी समवायके अनेकपनेकी सिद्धि है कि समवाय नाना हैं, क्योंकि अयुतसिद्ध अवयवी द्रव्यके आश्रित होनेसे संख्याकी तरह। जैसे—संख्या अवयवी द्रव्यके आश्रित है तो भी नाना है इसी प्रकार समवाय भी अवयवी द्रव्यके आश्रित है, इस कारण वह भी नाना है, यह बात असिद्ध नहीं है क्योंकि समवायसे यदि आश्रित नहीं मानते तो आपके ही सिद्धान्तमें विरोध आता है। कहा है विशेषवादके सिद्धान्तमें कि नित्य द्रव्यको छोड़कर बाकी सभी छहों द्रव्यमें आश्रितपना है। अर्थात् द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय ये सभी आश्रय किया करते हैं। इनमें आश्रयपना है। तो मानना होगा कि समवाय अवयवी द्रव्यके आश्रित हुआ करता है। यदि कहोगे कि परमार्थसे समवायमें आश्रितपना नहीं है जिससे कि समवाय अनेक बन जाय, समवायमें जो आश्रितपना है वह उपचारसे है, और उपचारका कारण यह है कि समवायी पदार्थ के होनेपर समवायका ज्ञान होता है। समवाय सम्बन्ध जिन दो तत्त्वोंमें जुड़ा करता है उन दो तत्त्वोंके होनेपर ही, उन दो तत्त्वोंकी समझ आनेपर ही समवायका ज्ञान होता है। वस्तुतः समवायको परके आश्रित माननेपर यह आपत्ति आयगी कि अपने आश्रय का विनाश होनेपर समवायका भी विनाश होनेका प्रसंग आ जायगा गुण आदिककी तरह। समाधानमें कहते हैं कि यह बात भी अयुक्त है क्योंकि विशेषका परित्याग होने से आश्रितत्व सामान्यको ही हेतु कहा गया है। अर्थात् गुण गुणीके आश्रित है, अवयव अवयवीके आश्रित है इस प्रकारके विशेष आश्रयका तो परित्याग कर दीजिए याने ज्ञान में मत सोचिये केवल एक आश्रय सामान्यकी ही बात चित्तमें रखिये तो ऐसे आश्रित-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

त्व सामान्यको यहाँ हेतु कहा है और इसी कारण आश्रयका विनाश होनेपर भी अर्थात्
समवायी पदार्थोंके विनष्ट होनेपर भी आश्रितत्त्व सामान्यका विनाश नहीं होगा, क्यों
कि आश्रितत्त्व सामान्य तो सदा है समवायमें और, फिर यदि विशेषके आश्रयसे ही
आश्रितत्त्वको मान्यता देते हो तो दिशा आदिकमें भी आश्रितपनेकी आपत्ति आती है।
देखो ! मूर्त पदार्थ जो उपलब्धि लक्षण प्राप्त हैं पर्वत नदी वगैरह. उन मूर्त द्रव्योंमें यह
इससे पूर्वमें है इत्यादि प्रत्ययरूप दिशाओंके लिङ्गका और यह इससे अपर है इत्यादि
प्रत्ययरूप काललिङ्गका भी सद्भाव उन मूल द्रव्योंके आश्रयसे कि यह पर है यह अपर
है यह पूर्वमें है यह पश्चिममें है आदिक ज्ञान होता है तो देखो ! विशेषके आश्रयका
सम्बन्ध होनेसे ही आश्रितपना यदि माना जाता है, तो दिशा और कालमें भी आश्रय
विशेषके कारण आश्रितपनेकी आपत्ति आ जायगी और इस तरह यदि दिशा, काल
आदिकको भी आश्रित मान लिया जाता है तो आपका ही यह सिद्धान्त कि नित्य द्रव्य
को छोड़कर छहों पदार्थोंमें आश्रितपना है सो इसका विरोध हो जायगा, क्योंकि
आपके तो दिशा, काल जैसे नित्य पदार्थोंमें भी आश्रितपनेकी बात आने लगी है। और
भी देखिये ! विशेष आश्रयसे ही आश्रितत्त्व माननेपर सामान्य भी अनाश्रित बन
बैठेगा, क्योंकि सामान्य भी तो गौ, अश्व आदिक विशेषोंमें रह रहा है और उन गौ,
अश्व आदिकका विनाश हो जाय तो सामान्य भी नष्ट हो गया, उसमें भी अनाश्रितता
आ गयी। लेकिन आश्रयका विनाश होनेपर भी सामान्यका विनाश तो नहीं माना है
समवायकी तरह। इस प्रकार समवायकी अनेकताकी सिद्धि हो ही जाती है, क्योंकि
वह अवयवी द्रव्यके आश्रित है।

अन्य अनुमान प्रमाणसे भी समवायके अनेकत्वकी सिद्धि—अथवा मान
भी लिया जाय समवाय आश्रित है तो ऐसे समवायका अनेक होना अनिवार्य है और
समवायकी अनेकताको सिद्ध करने वाला एक अन्य अनुमान प्रमाण भी है कि सम-
वाय अनेक हैं अनाश्रित होनेसे परमाणुकी तरह। अनुमानमें कहे गए हेतुका आकाश
आदिकके साथ व्यभिचार नहीं बताया जा सकता, क्योंकि आकाश आदिक भी कथं-
चित् नाना है। जैसे आकाश यद्यपि एक द्रव्यकी अपेक्षा एक है लेकिन वह व्यापक है,
अनन्त प्रदेशी है तो प्रदेशभेदकी अपेक्षा उसमें कथंचित् नानापन भी साधा जा सकता
तब तो समवाय नाना सिद्ध हो गए। तब यह कहना अयुक्त बात है कि इह इस प्रकार
के ज्ञानकी अविशेषता होनेसे और विशेष लिङ्गका अभाव होनेसे समवाय एक है।
विशेष लिंगका अभाव होनेसे समवाय एक है ? विशेष लिंगके अभावका साधक कोई
प्रमाण नहीं है और अभी अभी बहुतसे चिन्ह बताये जायेंगे और बताये गए हैं उनसे
यह सिद्ध होता कि समवायके विशेष लिंग हैं। जिस धर्मको जिस कल्पनाको समवाय-
वादी समवाय कहता है उसके समझनेके अनेक चिन्ह हैं। तो विशेष लिंग हो जानेके
कारण भी समवायमें नानापना सिद्ध है। अब यह भी सोचिये कि समवायको एक
बतानेके लिए शंकाकारने जो हेतु दिया था कि "इह" इस प्रकारके ज्ञानकी अविशेषता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करते हैं तो वहां हमारे पर्याय सामान्य विशेष ये सब ज्ञानमें आते हैं। ज्ञानमें आये लेकिन वे स्वतन्त्र सद्भूत पदार्थ नही हैं। देखो भैया द्रव्य स्वयं सद्भूत है उसे तो कह देते हैं विशेषवादमें कि द्रव्य स्वयं सत् नही है किन्तु सत्ताका समवाय होता है तब द्रव्य सत् कहलाता है। गुण और कर्म तो अलगसे कुछ सत् है ही नही। उनमें भी विशेष-वादने यह कहा है कि गुण और कर्ममें भी सत्ताका समवाय होता है तब वे पदार्थ कहलाते हैं। लेकिन सामान्य विशेष और समवाय इनको स्वयं सत्रूप कहा है। इनमें सत्ताके समवायकी भी जरूरत नहीं है। तो कितना विलक्षण अन्तर हो गया कि जो स्वयं कुछ है ही नही उसे तो कहते हैं स्वयं सत् है। इसमें सत्ताका सम्बन्ध करानेकी भी जरूरत नहीं है। और, जो पदार्थ स्वयं सत् है उसे कहा गया है कि यह सत्ताके सम्बन्धसे सत् है, यह स्वयं सत् नही है।

उत्पादव्ययध्रौव्यत्वमयी सत्ताकी निरखसे सकल समस्याओंका समाधान—सत्ताका लक्षण उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त मान करके चला जाय तो बहुत सी शंकायें अपने आप समाधानको प्राप्त हो जाती हैं। सत् वह कहलाता है जिसमें उत्पादव्ययध्रौव्य हो। उत्पादव्ययध्रौव्य या कोई भिन्न भिन्न तत्त्व नहीं हैं। किन्तु एक ही पदार्थमें जो कुछ बात बनती है उसको ही लक्ष्य कर करके यह ३ का अध्ययन कराया गया है। जैसे मिट्टीका घड़ा था और फूट गया, उसकी खपरियां बन गई तो खपरियोंका उत्पाद हुआ, घड़ेका व्यय हुआ और मिट्टीका ध्रौव्य हुआ तो यहां यह निरख लीजिए कि ये तीन उत्पादव्ययध्रौव्य एक साथ हुए, न कि क्रमसे। ऐसा नहीं होता कि पहिले घटका व्यय होले तभी तो खपरियाँ बनेगी अथवा पहिले घटकी खप-रियां बनले तब ही तो घटका व्यय होगा, ऐसा नहीं है। जो कुछ बात एक समयमें है उस हीको तीन रूपोंमें निरखा गया है। देखो खपरियोंकी दृष्टिसे तो उत्पाद है। घटकी दृष्टिसे व्यय है और मृतिकाकी दृष्टिसे ध्रौव्य है। तो ये उत्पादव्ययध्रौव्य पदार्थके निजी स्वरूप हो गए। अब जिसमें उत्पादव्ययध्रौव्य पाया जाय उसके मायने है पदार्थ।

जीव और पुद्गलमें उत्पादव्ययध्रौव्यमयी सत्ताका दिग्दर्शन—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये ६ जातिके पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्य वाले हैं, जीव अनन्तानन्त हैं। सभी जीव अपनी-अपनी योग्यतानुकूल नवीन-नवीन अव-स्थाओंसे परिणमते हैं और पुरानी अवस्थाओंको विलीन करते हैं। जीव वहीका वही रहता है। यद्यपि जीवका परिणमन अशुद्ध अवस्थामें कर्मोदयको निमित्त पाकर होता है और विकृत हो जाता है, लेकिन वह विभाव परिणमन कर्मसे आया हो सो बात नही है। वे जीव ही स्वयं अपने आप अपनी योग्यताके कारण बाह्यमें कर्मविपाकका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्थिति हो जायगी। फिर धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य माननेकी जरूरत ही क्या है? उत्तर देते हैं कि ठीक है। वह तो असाधारण निमित्त है जिन जीवोंके भोगमें आने वाली वस्तुकी पुद्गलकी उनके भाग्यके कारण गति स्थिति हो रही तो जीवोंका भाग्य विशेष निमित्त है साधारण निमित्त नहो कहलाया। क्योंकि गति और स्थितियों का जो हेतु बताया है प्रतिनियत आत्माके भाग्यको तो उस जीवके भाग्यसे खास खास ही चीजें तो आ सकेंगी, सबके निकट सब तो नहीं आ सकती। तो जीव और पुद्गल की गतिका सामान्य निमित्त नहीं हुआ। जैसे किसी मनुष्यने कोई चीज उठाकर फेंक दी तो उसकी गतिका निमित्त मनुष्य हो गया। हो गया, मगर वह विशिष्ट निमित्त है। साधारण निमित्त नहीं है। फिर और पुद्गलकी गति तो नहीं हो रही। सो अनिष्ट नहीं है आपकी बात हमें, जीवोंके भाग्यसे भी पुद्गलकी गति और स्थिति होती है सही है वह बात मगर वह साधारण निमित्त नहीं हो सकता। साधारण निमित्त तो जीव पुद्गलकी गति स्थितिका धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य ही हो सकता है। जैसे गतिका कारण पृथ्वी ही है जमीन न हो तो उसपर मनुष्य कैसे चले? तो गमनका कारण जमीन है, स्थितिका कारण जमीन है लेकिन वह है असाधारण निमित्त साधारण निमित्त न रहा तो ऐसे असाधारणपनेकी बात हम अदृष्टमें भी लगा देंगे। ठीक है, हो जायगा। मगर साधारण कारण तो गति स्थितिका धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य ही हो सकता है। इससे सिद्ध हुआ कि जब गति स्थिति रूप कार्य विशेष हो रहा है जीव पुद्गलमें तो उनका निमित्तभूत, साधारण निमित्त धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य अवश्य हैं। तो जब धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यकी सिद्धि हो गयी तब सामान्य विशेषात्मक स्वरूपके विरोधमें जो द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य रूपसे जो पदार्थकी भेद व्यवस्था की है वह भेद व्यवस्था ठीक नहीं होती?

प्रमेयस्वरूपपर विचार—इस परिच्छेदके प्रसंगमें प्रमेयके स्वरूपपर विचार चल रहा है। प्रमेय अर्थात् प्रमाणका विषयभूत पदार्थ। प्रमेय कहो अथवा ज्ञेय कहो एक ही बात है। ज्ञानमें जो विषय आता है वह सब सामान्य विशेषात्मक होता है। सामान्यविशेषात्मक होनेके लिये साधारण धर्म और असाधारण धर्मको निरखना पड़ता है। जो साधारण धर्म होता है वह तो उसमें भी और अन्यमें भी सबमें पाया जाता है। और, जो असाधारण धर्म होता है वह उसमें ही पाया जाता अन्यमें नहीं पाया जाता। ऐसा वस्तुमें स्वरूप है। उस स्वरूपको हम जानकर समझकर परख निरख करके विश्लेषण करते हैं, पर वस्तु तो यथार्थमें जैसी है तैसी ही है। पदार्थ स्वयं अपने आप अपनी सत्ता लिए हुए जैसे हैं तैसे ही होते हैं। अभेद हैं अखण्ड हैं, निर्विकल्प हैं और प्रतिसमय अपनी पर्याय अवस्था बताने वाले हैं। तो यों कहो कि हम पदार्थोंमें दो बातें निरखते हैं मूलमें—सत्त्व और परिणमन। पदार्थ है और उस की वह एक अवस्था है। अब उस पदार्थको समझनेके लिए जब हम भेद व्यवहार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की गतिमें जो निमित्त है वह है धर्म द्रव्य । इस प्रकार सबके अवस्थानका भी निमित्त है अधर्म द्रव्य । धर्म अधम द्रव्यको उदासीन निमित्त कहा गया है । चलो कोई, उसमें निमित्त है धर्मद्रव्य ठहरे कोई, तो उसमें निमित्त है अधर्म द्रव्य । उदासीन निमित्त यह क्यों कहलाता है कि इसमें क्रिया नहीं है । इसमें प्रयोगविधि नहीं है इसलिए यह उदासीन निमित्त कहलाता है । वस्तुत: तो सभी निमित्त उदासीन ही होते हैं । जब कोई अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उपादानमें नहीं रख सकता तो सभी ही उदासीन निमित्त हैं । लेकिन उन उदासीन निमित्तोंमें कुछ तो मिलता है निष्क्रिय और कुछ मिलता है क्रियावान । जैसे कुम्हारका व्यापार घट बननेमें निमित्त है । वह प्रयोगरूप है । तो चाहे प्रयोगरूप हो, अप्रयोगरूप हो, सभी निमित्त उदासीन होते हैं । ये धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य भी समस्त जीव पुद्गलकी गति और स्थितिमें उदासीन साधारण बाह्य निमित्त हैं ।

अदृष्टका गतिऔर स्थितिमें साधारण निमित्तत्वका अभाव —शंकाकार कहता है कि जीव पुद्गलमें जो गति स्थिति होती है उसमें धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्यको कारण माननेकी आवश्यकता नही है । गति और स्थिति भी अदृष्टके निमित्त से हो जायगी अर्थात् भाग्य जैसा है तैसी पदार्थोंकी गति और स्थिति होती है । इसमे धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य माननेकी जरूरत नही है । उत्तरमें कहते हैं कि यह बात ठीक नही है, क्योंकि जीवमें तो भाग्य है, जीवके साथ तो कर्म लगा है, तो कुछ सम्भव मान सकते हैं कि भाग्यकी वजहसे जीवोंकी गति और स्थिति होती है, सो भी वह असाधारण निमित्तकी बात है साधारण निमित्तकी नही, लेकिन पुद्गलमें तो भाग्य नही है । पुद्गल कहते हैं उसे जो रूप, रस, गंध, स्पर्शवान हो । तो रूप, रस, गंध, स्पर्श वाले अचेतन पदार्थ उनकी गति स्थिति फिर कैसे होगी ? क्योंकि भाग्य तो उन के है नही, इस कारण यह नही कह सकते कि भाग्यकी वजहसे गति और स्थिति होती है । जीव और पुद्गल जब गमन करते है अथवा ठहरते हैं तो उनमें साधारण बाह्य निमित्त धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य होते हैं ।

पुद्गलकी गति स्थितिके लिये जीवके अदृष्टमें साधारण निमित्तत्वका अभाव शंकाकार कहता है कि पुद्गलमें चेतनता तो नही है फिर भी उनकी गति और स्थिति इस तरह हो जायगी, किस तरह कि जो जिस आत्माके द्वारा उपभोग्य है, पुद्गल उनकी गति स्थिति उन आत्माओंके भाग्यसे हो जायगी । पुद्गलमें चेतनता नहीं है, पुद्गलमें भाग्य भी नही लगा रहता है तो क्या हुआ । शंकाकार कह रहा है कि जितनी भी गति और स्थिति होती है तो पुद्गलमें जो गति स्थिति होगी तो गति होकर स्थिति होकर वे पुद्गल जिसके भोगनेमें आयेंगे उस जीवके भाग्यसे गति और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बनाई जाती है. इस ही कारणसे धर्मादिक निमित्त भेदकी व्यवस्था भी बन जाय, क्यों कि आपके उक्त कथनमें कि आत्मा, काल, दिशा आदिकके कार्य विशेष हैं इस लिए उनका भी निमित्त है। आकाश द्वारा उन कार्योंको नहीं कराया जा सकता, तो यही बात धर्म आदिकमें भी है कार्य विशेष है गति और स्थिति जो कि अवगाहसे अन्य प्रकारका कार्य है। तो जैसे कार्यविशेषसे काल आदिकके निमित्त भेदकी व्यवस्था बन जाती है। अतः ऐसे ही गति स्थितिरूप कार्य भेद है अतः यह सिद्ध हो जाता है कि उनका निमित्त है धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य और ये वास्तविक पदार्थ हैं इन पदार्थोंके सद्भावमें कोई आशंका नहीं है। अब यह अनुमान पूर्णतया निर्दोष सिद्ध होता है कि ये एक साथ होने वाली गतियाँ किसी साधारण बाह्य निमित्तकी अपेक्षा रखती हैं। अर्थात् इन सब गतियोंमें साधारण निमित्त धर्म द्रव्य है। क्योंकि एक साथ गतियाँ हो रही ना! जो कार्य एक साथ हो रहे हैं उन सब कार्योंका कोई एक साधारण बाह्य निमित्त होता है और इस तरह समस्त जीव पुद्गलकी जो स्थितियाँ हैं वे भी किसी साधारण बाह्य निमित्तकी अपेक्षा रखती हैं, क्योंकि स्थितिरूप परिणमन भी एक साथ देखा जा रहा है। यों विशेषवाद सम्मत ६ पदार्थोंसे अधिक, यौगाभिमत १६ पदार्थोंसे अधिक ये धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य भी हैं जिनपर किसीने भी दृष्टिपात नहीं किया है। जब समस्त द्रव्योंका परिचय ही नहीं है तब फिर पदार्थोंकी संख्या नियत करना यह कैसे निर्दोष हो सकता है? धर्म द्रव्य है और अधर्म द्रव्य है।

सिद्धजीवोंकी अवस्थितिसे भी धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्यकी सिद्धि— जीव जब समस्त कर्मोंसे विमुक्त हो जाता है, शरीर और कर्मसे रहित हो जाता है तब उसकी गति ऊर्द्ध गति होती है। स्वभावसे वह ऊर्द्ध दिशाको ही गमन करता है। जब धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्य नहीं मानते तो उस ऊर्द्ध गमनमें कहीं फिर रुकावट न आयगी! क्योंकि अब तो यह मान लिया कि कोई गतिका साधारण बाह्य निमित्त नहीं है। पदार्थ अपने आपकी ओरसे ही बिना किसी साधारण बाह्य निमित्त के यदि परिणमन कर ही रहा है तो फिर सारे परिणमन एक साथ और बिना निरोध के हो जाना चाहिए, पर ऐसा तो नहीं हुआ। उसका यही प्रमाण है कि यह विश्व सद्भूत है। अब तक मौजूद है। तो यह बात यह है कि जब कोई आत्मा शरीरसे कर्मसे विकारसे अत्यन्त मुक्त हो जाता है तो ऊर्द्धगमन स्वभावके कारण वह आत्मा ऊपर ही एक ही समयमें एकदम चला जाता है। और जहाँ तक धर्म द्रव्य नामक साधारण बाह्य निमित्त है वहाँ तक यह चला जाता है और जहाँ साधारण बाह्य निमित्त धर्मद्रव्य न रहा उसके आगे मुक्त आत्माकी गति नहीं होती है। यद्यपि गति क्रियामें उपादान स्वयं गति क्रिया परिणत पदार्थ है तो भी उसमें साधारण बाह्य निमित्त धर्मद्रव्य है। जो जो बातें नहीं हुई और हो रही हैं, विशेषताको लिए हुए हैं उस विशेषतामें कुछ न कुछ बाह्य निमित्त होता है। तो मुक्त आत्माकी गतिमें भी जो साधारण बाह्य निमित्त है वह है धर्म द्रव्य। और इस ही प्रकार समस्त जीव पुद्गल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सामान्यका कार्य क्या है ? अनेक पदार्थोंमें अनुगत प्रत्यय करा देना । सो सामान्य जैसे सर्वत्र है, एक है इसी प्रकार आकाश सर्वत्र है। वही अनुगत प्रत्यय होनेका कारण बन जाय। कोई कहे कि कुछ कुछ बात फबती नही, युक्त नही जचती है कि एक पदार्थ अनेकका कार्य करदे । तो क्यों नही जचती ? जचाओ क्योंकि आकाशको जब अवगाहमें, गतिमें, स्थितिमें इन सबमें कारण मान लिया। समवायका क्या कार्य है ? द्रव्य गुणमें सम्बन्ध करा देना, कर्ममें सम्बन्ध करा देना । इन कार्योंको आकाश ही करदे। आकाश सर्वत्र है और एक पदार्थका अब अनेक कार्योंमें निमित्त मानना स्वीकार भी कर लिया है। इसके अतिरिक्त और जितने भी व्यवहार होते हैं—एक साथ हुआ, क्रमसे हुआ,जितने भी बुद्धि संकल्प होते हैं सारे विश्वभरके कार्य एक आकाश द्वारा मान लीजिए। यह इससे पूर्वमें है यह इससे पश्चिममें है आदिक प्रत्यय और अन्वयज्ञान तथा इसमें यह है इस प्रकारका ज्ञान ये सारे ही कार्य जो कि काल, आत्मा, दिशा, सामान्य, समवाय इनका कार्य माना गया है, उन सबका आकाश ही एक निमित्त बन जायगा, क्योंकि आकाश सब जगह सब समय बराबर मौजूद है। तो जैसे ये बातें इष्ट नही हैं विशेषवादमें कि आकाश कालका कार्य करदे आत्मा, दिशा, सामान्य, समवाय आदिकका कार्य करदे तब ऐसा यहाँ भी न मान लेना चाहिए कि एक आकाश अवगाहका भी कार्य करदे और जीव पुद्गलकी गति स्थितिका भी कार्य करदे यह बात सम्भव नही है।

कार्यविशेषसे निमित्त भेद मानकर अन्य पदार्थोंकी शंकाकार द्वारा सिद्धि— शंकाकार कहता है कि कार्य विशेषसे काल आत्मा आदिकके निमित्त भेदकी व्यवस्था की जा रही है। आकाशका कार्य अवगाह है सो तो ठीक है, मगर बुद्धि होना यह आत्माका विशेष कार्य है। किसीको भी नही जचता कि ज्ञान करना यह भी आकाशका कार्य है। यह क्रमसे काम हुआ, यह एक साथ काम हुआ, यह इससे छोटा है, यह इससे बड़ा है, इस प्रकारका जो कालका ज्ञान होता है उसका हेतु काल है। वह कालका विशेष कार्य है। यह इससे पूर्वमें है यह इससे पश्चिममें है, यह आकाशकी अपेक्षा विशेषकार्य है। बहुतसे व्यक्तियोंमें अनुगत ज्ञान होना, मनुष्यमें मनुष्यत्व, मनुष्यत्व मनुष्यत्व सब मनुष्योंमें है इस प्रकारका अनुगत ज्ञान होना यह सामान्यका विशेष कार्य है। यह आकाश द्वारा सम्भव नही है। इसमें यह है, आत्मामें ज्ञान है, घटमें रूप है, इस प्रकारका जो अयुतसिद्ध इह इदं सम्बंधका बोध होता है वह सम्बंधन समवायका कार्य है। तो जब कार्य विशेष है तो कार्य विशेषके भेदसे काल आदिक निमित्तोंमें भी भेदकी व्यवस्था बन जाती है। यह आक्षेप देना अयुक्त है कि आकाश ही इन सब पदार्थोंका कार्य करदे !

कार्यविशेषसे ही धर्म द्रव्य व अधर्म द्रव्यकी सिद्धि— उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि बस इस ही कारणसे याने कार्य विशेषसे निमित्त भेदकी व्यवस्था

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गति व स्थितिमें पृथ्वी आकाश आदिके साधारण निमित्तत्वका अभाव—शंकाकार कहता है कि जीव पुद्गलकी गति और स्थितिका कारण साधारण निमित्त पृथ्वी आदिक ही है। उसमें धर्म अधर्म द्रव्यकी कल्पना न करना चाहिए। समाधानमें कहते हैं कि यह कहना असंगत है। यदि गतिका साधारण निमित्त पृथ्वी आदिक ही है तो गगनमें रहने वाले पदार्थ जो चलते हैं और ठहरते हैं उनमें तो पृथ्वी आदिकके निमित्तकी सम्भावना नहीं है। जैसे पक्षी आकाशमें उड़ते हैं अथवा कोई चीज आकाशमें स्थिर है। बहुतसे चन्द्र तारे ही स्थिर हैं तो उन पदार्थोंकी गति और स्थितिका कारण साधारण निमित्त पृथ्वी आदिक कहाँ है! शंकाकार कहता है कि तब फिर आकाश साधारण निमित्त हो जायगा गति और स्थितिका, क्योंकि आकाश तो सर्वत्र मौजूद है। तब कहीं भी यह नहीं कह सकते कि देखो इसकी गति स्थितिके लिए आकाश है नहीं और गति स्थिति होने लगे। समाधानमें कहते हैं कि यह कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि आकाशको तो अवगाहमें कारण है ऐसा बताया है। अवगाह निमित्तत्व है आकाशमें, गति निमित्तत्व और स्थिति निमित्तत्व आकाशमें नहीं है। आकाशका असाधारण लक्षण अवगाह बताया गया है।

गति स्थितिमें आकाशका निमित्तत्त्व माननेपर कार्योंमें आकाशके निमित्तत्त्वका प्रसंग—यदि कहो कि एक आकाश ही अनेक कार्योंका निमित्त बन जायगा पदार्थोंके अवगाहका भी निमित्त आकाश है और पदार्थोंकी गति और स्थिति का भी निमित्त आकाश है। यदि आकाशको ही सब कार्योंका निमित्त मान लोगे तब अन्य अनेक सर्वगत पदार्थोंकी कल्पना करना अनर्थक हो जायगा। विशेषवादमें आत्मा काल, दिशा, समवाय आदिक अनेक पदार्थ सर्वगत माने हैं, तो जब आकाश सब जगह है तो आकाशसे ही वे सब कार्य हो जायें जिन कार्योंके होनेके लिए अनेक सर्वगत पदार्थ मानने पड़ रहे हैं। समवायसे जो कुछ कार्य होता है वह भी आकाशसे हो जाय, दिशा और कालसे जो कुछ कार्य होता है वह भी आकाशसे हो जाय। जब एक पदार्थ को अवगाहमें निमित्त, गतिमें निमित्त, स्थितिमें निमित्त, यों अनेक कार्योंमें निमित्त मान लोगे तब तो एक आकाश पदार्थ ही पर्याप्त है सब कार्योंके लिए। कालका क्या कार्य है? द्रव्योंका परिणमना, पदार्थोंका अदल बदल करना अथवा यह छोटा है, यह बड़ा है, ऐसा परत्व और अपरत्वका ज्ञानका हेतु बनना। इस कार्यको आकाश ही करदे, क्योंकि आकाश सब जगह है। कहीं भी यह प्रश्न नहीं हो सकता कि इस कार्य के होते समय आकाश तो था ही नहीं। आकाशका कार्य क्या है? चैतन्य। जो भी कार्य माना है उसे भी आकाश ही करदे! दिशाओंका कार्य क्या माना? यह इससे पूर्व है, यह इससे पश्चिममें है, इस प्रकारके प्रत्ययका हेतु बनना यह है दिशावोंका काम। सो दिशायें जैसे सर्वव्यापक हैं इसी प्रकार आकाश सर्वव्यापक है। तो वे सब काम आकाश द्वारा क्यों नहीं हो जायेंगे? जब एक आकाशको अवगाह गति, स्थिति, सबमें निमित्त मान लिया गया तब अन्य पदार्थोंके कार्यको भी आकाश ही कर देगा।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारण पूर्वक गति और स्थिति बनती है, उनमें बाह्य निमित्त कुछ नहीं होता। तो यहाँ यह समझते हैं कि यहाँ भी अनेक कार्योंमें कोई साधारण बाह्य निमित्त हुआ करता हैं। जैसे किसी सभामें नाटक हो रहा है, कोई नर्तकी अपना परिणमन कर रही है। अब उस नाटकको देखने वाले लोग अनेक प्रकारकी योग्यताके हैं। कोई उसी परिणमनको देखकर हर्ष करता है तो कोई विषाद करता है। तो कोई वासनासे वासित होता है तो कोई वैराग्यमें बढ़ता है। सब प्रेक्षक जनोंकी जो ये नाना प्रकार की परिणतियाँ हुई उन परिणतियोंमें वह नर्तकीका परिणमन हुआ या नहीं? बाह्य निमित्त तो यों कहलाया कि प्रेक्षक जनके आत्मासे वह भिन्न आत्मा है अतएव हुआ बाह्य निमित्त और साधारण यों कहलाया कि समस्त प्रेक्षक जिनके कि किसी न किसी प्रकारके परिणमनमें वह निमित्त हुआ इस कारण वह साधारण निमित्त है। तो साधारण निमित्त तो मानना ही पड़ेगा। साधारण निमित्त रहित होकर कुछ भी क्रिया नहीं होती अनेकोंकी युगपत् गति स्थिति चूंकि अनेक भिन्न परिणमन रूप कार्य है तो उसका साधारण कोई बाह्य निमित्त है।

गति व स्थितिमें कालके निमित्तत्वका भी अभाव—यहाँ यह भी नहीं कह सकते कि जीव पुद्गलकी गति और स्थितिका साधारण बाह्य निमित्त काल हो जायगा। समय रूप परिणमन है उसने यह परिणमन कर दिया, यह यों नहीं कह सकते कि काल द्रव्यके निमित्तसे होने वाले परिणमन रूप कार्यमें और गति स्थिति रूप कार्यमें इन दोनोंमें अन्तर है। यह एक समानजातीय नहीं है। तो काल द्रव्य भी निमित्त नहीं है। अन्य कोई साधारण निमित्त नहीं होता सो भी बात नहीं है। जीव पुद्गलकी गति स्थितिका साधारण निमित्त कोई अवश्य है और वे हैं धर्मद्रव्य अधर्म द्रव्य। यदि साधारण निमित्त रहित होकर कार्य अपने ही नियत कारणसे कार्य करने लगे तो यह बतला दीजिए कि सभासदोंके हर्ष विषाद आदिक नाना परिणमनोंका वहाँ कारण अन्य कोई बाह्य पड़ा है, नर्तकी परिणमन सो वह कैसे हो गया? यदि कहो कि वह सहकारी मात्र है नर्तकीका परिणमन, उसका साधारण निमित्त पड़ गया तो समाधानमें कहते हैं कि यही बात तो इस प्रसंगमें है। समस्त पदार्थोंकी गति और स्थितियाँ जो एक साथ हो रही हैं उनका सहकारी मात्र धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य है और वह है साधारण निमित्त। सभी जीव पुद्गलकी गतिमें वह स्थितिमें वह स्थितिमें वह कारण है, तब फिर धर्म द्रव्य और अधर्मद्रव्यको गति स्थितिमें साधारण निमित्त क्यों नहीं मान लिया जाता है? वे अवश्य हैं और इस तरह धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्यकी सिद्धि है। उसका विशेषवाद सम्मत पदार्थमें कोई जिक्र ही नहीं है। अतः वे द्रव्य गुण आदिक ६ पदार्थ असंगत हैं। मूलमें यदि यह कहा जाय कि सामान्य विशेषात्मक जो हो सो पदार्थ है और उसके विस्तारमें अर्थक्रियाको पद्धतिसे जाति बनाकर कहा जाय तो यों सिद्ध होगा कि जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये ६ जातिके पदार्थ हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न्याश्रय दोष आता है शंकाकार जो यह कह रहा है कि चलने और ठहरनेके परिणमन वाले पदार्थ ही परस्पर एक दूसरेमें कारण होते हैं तों यहां जब तिष्ठने वाले पदार्थोंके कारण जाने वाले पदार्थोंकी गति सिद्ध होले तब तो जाने वाले पदार्थोंकी गतिसे पदार्थोंकी स्थिति सिद्ध होगी। और, जब ठहरने वाले पदार्थोंकी स्थिति सिद्ध हो ले तब जाने वाले पदार्थोंकी गतिकी सिद्धि होगी। इस प्रकार दोनोंकी सिद्धि अन्योन्याश्रित हो गयी। और अन्योन्याश्रित होनेका अर्थ यह है कि दोनोंकी ही सिद्धि नही हो सकती है इस कारण समस्त पदार्थोंकी गति स्थितिका कारणभूत कोई साधारण बाह्य निमित्त अवश्य माना जाना चाहिये। और, जो साधारण बाह्य निमित्त है वही है धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य।

लोकाकारकी सिद्धिसे भी धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्यकी प्रसिद्धि—एक सामूहिक रूपसे भी बात सोच सकते हैं कि ये पदार्थ जो चल रहे हैं इनके चलनेकी सीमा ही होगी। अन्यथा कोई पदार्थ अनन्त योजना तक भी चलता जायगा और फिर विश्व किसे कह सकेंगे ? लोक कहते किसे हैं ? जहां समस्त पदार्थोंका समूह पाया जाय उसका नाम लोक है। लोक है ऐसा कहनेसे यही तो सिद्ध होता है ना, कि उसके बाहर आकाश ही आकाश है और कुछ नहीं है। तो इस तरह समस्त पदार्थोंकी गति एक जगह परिसमाप्त हो जाती है जिससे कि लोकका आकार बनता है। उससे आगे पदार्थ क्यों नही जा पाते ? उसका हेतु क्या होगा ? यही कैसे होगा, कि समस्त पदार्थोंकी गतिका अथवा बाह्य निमित्त नही है अलोकमें इसलिए सब पदार्थोंकी गति लोक तक ही समाप्त होती है। तो लोककी रचनासे विश्वकी रचनासे इसके आकारसे भी यह ध्वनित होता है कि जीव पुद्गलकी गति और स्थितिका हेतुभूत उनमें बाह्य निमित्त कुछ अवश्य है।

गति व स्थितिमें स्व-स्व प्रतिनियत कारणके निमित्तत्वका भी अभाव

शंकाकार कहता है कि चलो, न सही ठहरने वालेकी स्थितिका निमित्त गति परिणामी पदार्थ और न सही चलने वालेकी गतिका निमित्त स्थिति परिणामी पदार्थ लेकिन उनमें निमित्त कुछ नही है और फिर समस्त पदार्थोंकी गति और स्थितियां जो होती हैं वे प्रतिनियत अपने अपने कारणपूर्वक होती हैं। जो पदार्थ चलते हैं उन पदार्थोंका जो प्रतिनियत कारण है उस कारणसे उनकी गति है। जो पदार्थ ठहरते हैं, ठहरने वाले पदार्थोंका जो निजी कारण है उस निज कारण पूर्वक पदार्थकी स्थिति होती है। समाधानमें कहते हैं कि ऐसा मानते हो तो यह बतलावो कि जिस समय किसी नर्तकी का परिणमन हो रहा है वह समस्त प्रेक्षक जनोंको नाना प्रकारके हर्ष, काम, क्लेश आदिककी उत्पत्तिमें निमित्त हो रहा है। वह उनमें निमित्त है ना ? वह कैसे हुआ है ? यहाँ इस बातपर समाधान दिया जा रहा है कि शंकाकारने यह कहा कि जो पदार्थ चलते हैं, जो पदार्थ ठहरते हैं उनका ही प्रतिनियत निजी कारण है जिस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दूसरे जीवोंका भी परिणमन समझ लिया जाता है लेकिन धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य एक तो पर पदार्थ हैं और फिर अचेतन हैं, अमूर्त हैं, स्वभाव परिणमन वाले हैं इस कारण इनका परिणमन प्रत्यक्ष गोचर नही है। वीतराग सर्वज्ञ केवल ज्ञानी परमात्माओंके द्वारा जाने गए हैं। तो इन धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्योंको मिला करके पदार्थोंकी संख्या पूर्ण कर पायेंगे।

धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्य सहित चार अन्य पदार्थोंकी झलक—अब धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्यको मान लेनेपर जब निरखते हैं तो गुण तो शक्तिरूप है और शक्ति है द्रव्यकी अभिन्न शक्ति अतएव गुण अलग पदार्थ न रहा। कर्म परिणमते हैं और परिणमते हैं पदार्थके परिणमनके समय पदार्थमें तादात्म्यरूप. इस कारणसे वह भी अलग पदार्थ न रहा। और सामान्य साधारण धर्मका नाम है और वह है पदार्थों का ही, अतएव सामान्य कोई अलग पदार्थ न रहा। विशेष भी पदार्थका असाधारण धर्म है, वह भी पदार्थ अलग न रहा और समवाय कोई पदार्थ है ही नही। काम भी नही। तो अब विशेषवादसम्मत ६ पदार्थोंमेंसे रह गया एक द्रव्य। अब द्रव्योंकी जो ९ संख्यायें बतायी हैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन। इनमेंसे आकाश और काल तो स्वतन्त्र ऐसे ही द्रव्य हैं। कुछ थोड़ासा उसके स्वरूपमें यथार्थताभर समझना है। आकाश और कालको छोड़कर द्रव्यके और जितने भेद किए गए हैं वे भेद जीव और पुद्गलमें गर्भित होते हैं। जैसे पृथ्वी, जल, अग्नि. वायु ये शरीर पुद्गलमें गर्भित होते हैं, आत्मा जीव कहलाता है, दिशा कोई पदार्थ नही, मन द्रव्यमन हो तो पुद्गलमें गर्भित है, भावमन हो तो वह जीवकी परिणति है। इस प्रकार जीव, पुद्गल, आकाश, काल ये चार पदार्थ तो विशेषवादमें माने गये पदार्थ समूहमेंसे निकलते हैं, उनमें धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्यका कोई जिक्र नही है। तो धर्म और अधर्म ये शामिल कर देनेसे फिर पदार्थके ये ६ प्रकार हो जाते हैं—जीव, पुद्गल, आकाश, काल, धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य।

गति स्थितिमें परस्पर निमित्तत्वका अभाव—यहाँ शंकाकार कहता है कि जीव और पुद्गलकी गति और स्थितिमें कारणभूत पदार्थ जो धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य माने हैं वे असंगत हैं क्योंकि गति और स्थितिरूप परिणमनने वाले पदार्थ ही परस्पर एक दूसरेके कारण बन जाते हैं। जैसे—ठहरना तब बनता है जब कोई चीज चल रही हो। तो देखो ठहरनेमें चलना निमित्त हुआ अथवा कोई स्थिर पदार्थका आवरण आ गया या अन्य कोई कारण आ गए उससे ठहरना बन गया। चलना बनता कब है? जो न चलता हो स्थित हो उस पदार्थमें क्रिया हुई कि चलना हो गया। तो चलना और ठहरना इस रूप परिणमने वाले पदार्थ ही परस्परमें एक दूसरे की गति स्थितिके कारण होते हैं। अलगसे धर्मद्रव्य अथवा अधर्मद्रव्य माननेकी आवश्यकता नहीं है। उत्तरमें कहते हैं कि यह कहना असंगत है। इस कथनमें तो अन्यो-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अन्वर्थ रूपसे और प्रसिद्ध रूपसे नाम है धर्मद्रव्य। इसी प्रकार जीव पुद्गलकी स्थितियोंका बाह्य निमित्त है, उसका कुछ भी नाम रख दो, लेकिन उसका नाम प्रसिद्ध है अधर्म द्रव्यके बिना जीव पुद्गलकी गति और स्थितिका कार्य होना असम्भव है।

धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्यकी स्पष्ट प्रसिद्धि धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्यकी सिद्धिके उक्त कथनका तात्पर्य यह हुआ कि धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य नामका पदार्थ विशेषवादी सम्मत द्रव्यमें गुण, कर्म, समान्य, विशेष, समवाय आदि किसीमें अन्तभूर्त नहीं है, अतः उनसे पृथक पदार्थ है। तब ६ पदार्थ हैं उक्त प्रकारसे यह बात संगत नहीं बैठती है। देखो ! इस सारे विश्वमें एक धर्म द्रव्य है जो कि जीव, पुद्गलके चलनेमें सहायक होता है। धर्म द्रव्य किसीको जबरदस्ती नहीं चलाता है किन्तु जीव, पुद्गल, चलें तो उनके चलनेमें सहायक होता है। जैसे कि मछलियाँ चलें तो उनके चलनेमें जल सहायक है जल मछलियोंको चलनेकी प्रेरणा नहीं करता, किन्तु वे मछलियाँ ही स्वयं जब चलनेका यत्न करती हैं तो उसमें जल सहायक है, और यह बात प्रत्यक्ष दिखती है कि जलसे बाहर आ जानेपर मछलियां चल नहीं सकती हैं। तो जैसे मछलियोंके चलनेमें जल सहायक है इसी प्रकार समस्त जीव पुद्गलोंके और मछलियोंके चलनेमें भी धर्म द्रव्य सहायक है। कोई एक साधारण बाह्य निमित्त होता है गतियोंमें इसी प्रकार जब जीव, पुद्गल, चल करके ठहरते हैं तो उनके ठहरनेमें निमित्त होता है अधर्म द्रव्य। जैसे कि कोई पथिक चलते हुए किसी वृक्षके नीचे ठहर जाता है छाया का प्रयोजन पाकर लेकिन उस पथिकको वृक्ष जबरदस्ती ठहराता नहीं है। पथिक ही स्वयं इच्छा और यत्न करके ठहरना चाहे तो उसके ठहरनेमें वृक्षकी छाया निमित्त है, आश्रयभूत है। इसी प्रकार अधर्म द्रव्य जीव पुद्गलको जबरदस्ती ठहराता नहीं है किन्तु चलते हुए जीव पुद्गल स्वयं ही ठहरना चाहें तो वहां अधर्म द्रव्य सहायक होता है।

धर्म द्रव्य व अधर्म द्रव्यका विशेष परिचय- धर्म और अधर्म द्रव्य अमूर्तिक हैं, अचेतन हैं और समस्त लोकाकाशमें तिलमें तेलकी तरह व्याप्त हैं। अतएव जितने लोकाकाशके प्रदेश हैं उतने प्रदेश वाले हैं ये धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य। सब द्रव्योंमें जैसे ६ साधारण गुण होते हैं— अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अलघुगुरुत्व, प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व ये छह साधारण गुण इन दो द्रव्योंमें भी हैं। ये अलघुगुरुत्व गुणके कारण निरन्तर षडगुण हानिवृद्धिरूप परिणमते रहते हैं। इनका परिणमन स्वाभाविक है और इसी कारण इनका परिणमन विज्ञात नहीं होता। अमूर्त पदार्थका स्वरूप सूक्ष्म है और परिणमन भी सूक्ष्म है। इस कारण अमूर्तका परिणमन साबित नहीं होता। केवल एक जीव द्रव्यका परिणमन और उसमें भी निजका परिणमन निज होनेके कारण और खुद है ज्ञानस्वरूप अतएव अपने आपका परिणमन विज्ञात होजाता है। लेकिन परजीवका परिणमन जीवको ज्ञात नहीं हो पाता। अपने समान हैं ये सब जीव और उस प्रकारके परिणमनका खुदका अनुभव किया है इस समानताके कारण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सामान्यविशेषात्मक पदार्थकी सिद्धि होनेसे विपरीत पद्धतिसे पदार्थ माननेका निराकरण—उक्त विचार विमर्शके बाद मानना ही होगा कि प्रमाणका विषयभूत सामान्य-विशेषात्मक होता है। तो सामान्य विशेषात्मक सत् इतना तो सामान्यरूपसे कहा गया है कि प्रमाणका विषय है यह और उसके प्रकारोंमें अर्थक्रिया की पद्धतिसे जाति बनाकर पदार्थके प्रकार होते हैं इस तरह—जीव, पुद्गल धर्म, अधर्म आकाश और काल। नैयायिक द्वारा माने गए १६ पदार्थ और वैशेषिक द्वारा माने गए ६ पदार्थ वे सबके सब इन ६ द्रव्योंमें अन्तर्भूत हो जाते हैं। जो १६ पदार्थोंसे चैतन्यस्वरूप है, चैतन्य परिणतियां हैं चैतन्य गुण हैं वे सब तो जीव द्रव्यमें अन्तर्भूत हो जायेंगे। प्रमाण, संशय, प्रयोजन, सिद्धान्त तर्क, निर्णय आदिक जो ज्ञानकी परिणतियां हैं वे सब जीव द्रव्यमें अन्तर्भूत हैं। और, प्रमेय अवयव जीवमें भी अन्तर्भूत है और पुद्गलमें भी अन्तर्भूत है। इसके अतिरिक्त काल द्रव्य जिसे किसी रूपमें विशेषवादमें माना है वह और धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्यका तो तो किसीने कुछ जिक्र ही नहीं किया है। तो यों पदार्थोंकी व्यवस्था सामान्यरूपसे सामान्य विशेषात्मक सत् है। यों बनता है। और, विस्ताररूपमें प्रयोगरूपमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश। काल इन ६ जातियोंमें बनता है।

धर्म द्रव्य व अधर्म द्रव्यकी सिद्धि होनेसे विशेषवादाभिमत षट् पदार्थोंकी व्यवस्थाकी असिद्धि—पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होता है। इसके विरोधमें विशेषवादने जो द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इन ६ पदार्थोंकी व्यवस्था बतायी, उसमें उन्हींके ही सजातीय नैयायिक द्वारा अभिमत १६ पदार्थोंका कहीं समावेश नहीं हो पाता और उसके अतिरिक्त धर्म और अधर्म द्रव्यका भी उन ६ पदार्थोंमेंसे किसीमें भी अन्तर्भाव नहीं होता। धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य हैं इनकी सिद्धि प्रमाणसे होती है। कोई वहां यह सन्देह न करे कि धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य क्या वस्तु हैं? देखो वह अनुमानसे सिद्ध है। वह अनुमान इस प्रकार है कि ये समस्त जीव पुद्गलके आश्रय रहने वालेली गतियां किसी साधारण बाह्य निमित्तकी अपेक्षा रखकर होती हैं, क्योंकि एक साथ होने वाले गति होनेसे। जैसे कि एक तालाबके आश्रय रहने वाले अनेक मछलियोंकी गतिका बाह्य निमित्त है जल, इसी प्रकार जीव पुद्गल आदिक सभी पदार्थोंका जो एक साथ गमन देखा जा रहा है उस गमन हेतुसे यह सिद्ध होता है कि कोई इस विश्वमें साधारण बाह्य निमित्त अवश्य है जिसकी अपेक्षासे ये जीव पुद्गल आदिक एक साथ गमन किया करते हैं। जीव और पुद्गलमें स्थितियां भी साधारण बाह्य निमित्तकी अपेक्षा रखती हैं क्योंकि अनेक पदार्थोंकी एक साथ स्थिति होती है। जैसे कि एक कलशमें रहने वाले अनेक बेर जैसे स्थित हैं तो उनका बाह्य निमित्त वह एक कलश है इसी प्रकार समस्त जीव पुद्गलकी जो स्थितियां होती हैं उनका कारण कोई एक साधारण बाह्य निमित्त है। और धर्म द्रव्यका जो कुछ साधारण बाह्य निमित्त है, उसका नाम कुछ रखलो मगर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का एक प्रमाण और दूसरा प्रमेय इन दो पदार्थोंमें ही अन्तर्भाव कर बैठेंगे तब फिर छह पदार्थोंकी व्यवस्था भी नहीं बन सकती, क्योंकि द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष समवाय ये सबके सब प्रमेय हैं। उनमें जो एकबुद्धि नामक गुण या जो भी निर्णय कर सकने वाला गुण माना है, उसे प्रमाणका रूप दे देंगे तो यों छहोंके छहों पदार्थोंका अन्तर्भाव हो जाता है फिर तो ६ पदार्थ न बने। शंकाकार कहता है कि यद्यपि उन ६ पदार्थोंका प्रमाण और प्रमेय इस प्रकारकी दो संख्याके पदार्थोंमें ही अन्तर्भाव हो सकता है, तो भी उसके भीतरके और विभिन्न लक्षण हैं तथा प्रयोजन हैं। जिन की वजहसे द्रव्य गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय यों ६ पदार्थोंकी व्यवस्था बन जायगी। तो समाधानमें कहते हैं कि इसी प्रकार अवान्तर भिन्न लक्षणकी वजहसे प्रयोजनके वश प्रमाण प्रमेय आदिक १६ पदार्थोंकी व्यवस्था भी क्यों नहीं मान लेते? क्योंकि विभिन्न लक्षण है। प्रयोजन भी उनका निराला है इसलिए १६ पदार्थोंको व्यवस्था भी बन जाय। जैसे कि इन्हीं कारणोंसे आप छह पदार्थोंकी व्यवस्था बना रहे हैं। जब लक्षण और विभिन्न लक्षणपना बराबर है तो ६ पदार्थोंकी व्यवस्था तो बने और प्रमाण आदिक १६ पदार्थोंकी व्यवस्था न बनाई जाय इसमें कौन सा हेतु है?

यौगाभिमत सोलह पदार्थोंकी भी वस्तुतः असिद्धि – भैया! उक्त बात विशेषवादके मुकाबलेमें कही गई है। वस्तुतः देखो तो जिस प्रकार विशेषवाद समस्त ६ पदार्थोंकी व्यवस्था नहीं है इसी प्रकार नैयायिकके मतके प्रमाण आदिक १६ पदार्थोंकी भी व्यवस्था नहीं बनती। और, इन प्रमाण प्रमेय आदिक पदार्थोंका उनके योग्य भिन्न-भिन्न प्रकरणोंमें निराकरण भी किया गया है। तो यह सामान्य विशेषात्मक प्रमेयके विरोधमें उपस्थित की गई ६ पदार्थोंकी व्यवस्था न बन सकी। इसका उत्तर कुछ शंकाकारने अन्तर्भावके रूपमें दिया सो उन छह पदार्थों प्रमाण आदिक १६ पदार्थोंका अन्तर्भाव भी कर लो खींचतानकर, फिर भी कुछ पदार्थ ऐसे छूट जाते हैं जो प्रमाण आदिक १६ पदार्थोंमें भी नहीं हैं। उनसे भी अलग, जैसे कि १६ पदार्थ माने हैं। जितना जो कुछ अटपट ध्यानमें आया वही मान लिया गया। कोई क्रमिक बुद्धि तो नहीं कि किसी पद्धतिसे चलकर ये १६ पदार्थ माने गये हैं। तो अब देखो! विपर्यय और अनध्यवसाय इन दो का अस्तित्व कहाँ कहा गया? १६ पदार्थोंकी संख्यासे भी अलग विपर्यय और अनध्यवसाय है। विपर्यय उसे कहते हैं कि वस्तुका स्वरूप तो है और भाँति और अन्य प्रकारसे उस स्वरूपको रखा जाय। और, अनध्यवसाय उसे कहते हैं कि किसी पदार्थको एक सरसरी निगाहसे अति साधारणरूपसे कुछ जाननेको थे कि आगे कुछ भी न बढ़ सके, उस संबंधमें कुछ भी निश्चय न कर सके तो इन दो ज्ञानोंका कहाँ अन्तर्भाव है? तो प्रमाण आदिक १६ पदार्थोंकी भी व्यवस्था युक्तियुक्त नहीं है और द्रव्य, गुण, कर्म आदिक रूपसे भी ६ पदार्थोंकी व्यवस्था युक्तिसंगत नहीं है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जुदे हैं। प्रमाण बुद्धिमें शामिल नही हो सकता। वैशेषिकोंने बुद्धि नामका गुण माना है। तो बुद्धि तो एक सामान्य प्रतिभासका नाम है। बुद्धि प्रमाण भी हो सकता है। अप्रमाण भी हो सकता है तो प्रमाण बुद्धिसे निराली बात है। प्रमेय मायने ज्ञेय। जो प्रमाणके द्वारा जाना जाय। प्रमेयत्व धर्म करके युक्त प्रमेयत्वसे समवेत प्रमेयसे कहाँ अन्तर्भाव कर सकेंगे ? ऐसा है कि ऐसा है ऐसी चलित प्रतिपत्तिरूप बुद्धिका नाम संशय है। इस संशयका ६ पदार्थोंके प्रकारोंमें कहीं भी जिकर नही है। प्रयोजन—एक उद्देश्य, कुछ गर्ज इसका भी कहीं उल्लेख नही किया गया। दृष्टान्त किसी पदार्थको सिद्ध करनेके लिए जो उदाहरण दिया जाता है उस दृष्टान्तका भी कहीं जिक्र नही है। अवयव जिसके समूहका अवयवी बनता है, अवयवके ढंगसे अवयवत्वके रूपसे कहीं भी इसका वर्णन विशेषवादमें नही है। तर्क—जिससे विचार चलते हैं उन तर्कका भी कहीं जिक्र नही है। निर्णय—ऊहापोह करनेके बाद किसी एक निर्णयपर जिसकी जो विधि है, जिसे लोग निर्णय कहते है उसका किसमें अन्तर्भाव है ? कहीं भी नही। वाद कोई वक्तव्य दिया जाता, समर्थ वचन, सभामें श्रोतावोंपर अपने मंतव्यकी छाप देनेके लिए जो कुछ कथन चलता है उस वादका भी कहीं जिक्र नही। जल्प किसी बातको सिद्ध न होने देनेके लिए जो वार्तालाप होता है वह जल्प है। इसका कहाँ वर्णन है ? इसी प्रकार वितंडा—जो कि किसीके बताये हुए सिद्धान्तका निवारण करनेके लिए अथवा अपने तत्त्वके विकल्पकी रक्षाके लिए जो वक्तव्य होता है वह वितंडा है। जल्प और वितंडामें यह अन्तर है कि जल्पमें तो अपने मंतव्यकी रक्षाके लिए प्रहार किया जाता है। इस तरहके वचनालापका ध्येय होता है और वितंडामें अपने रक्षणके लिए एक आवरण किया जाता है। अपने तत्त्वमें कोई बाधा न दे सके, उसके लिए जो प्रलाप किया जाता है वह वितंडा है, इसका भी कहाँ वर्णन है। हेत्वाभास जो हेतु संदोष हो, जिसमें निर्दोषता नही है उसका कहाँ वर्णन है। छल पदार्थ—कोई कुछ कह रहा हो, उसे हटानेके लिए, उसकी बातका कोई दूसरा ही अर्थ लगाकर उसे शर्मिन्दा करना यह सब नैयायकके छल पदार्थ हैं, इनका कहाँ वर्णन है ? इसी प्रकार सिद्धान्तमें दूसरेके वक्तव्यमें उसका मिला हुआ अपना विरुद्ध वचन कहकर दूसरेकी बातको दूषित करना जाति है, इसका भी कहाँ वर्णन है ? और, जिस किसी भी प्रकारसे किसी भी वादमें जीत न सके तो वहाँ कुछ विसम्वाद मचा देना, विवाद कर देना यह निग्रह स्थान है। इसका कहाँ वर्णन है। तो नैयायिकों द्वारा माने गए ये १६ पदार्थ हैं। ये तो ६ पदार्थ से अधिक हो गए, तब फिर ६ पदार्थोंकी संख्या क्या रही ?

यौगाभिमत सोलह पदार्थोंकी विशेषवादाभिमत छह पदार्थोंमें अनन्तर्भाव— शंकाकार कहता है कि उन १६ पदार्थोंको हम ६ पदार्थोंमें ही अन्तर्भूत कर देंगे, इस कारणसे अधिक पदार्थोंकी व्यवस्था न बनानी पड़ेगी। उत्तरमें कहते हैं कि एक तो अन्तर्भाव होता नही, जैसे कि विशेषवादमें ६ पदार्थ माने हैं और मानो अन्तर्भाव करने लगे तो द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इन छहोंके छहों पदार्थों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाना चाहिए, तभी द्रव्यके सही प्रकार ज्ञात हो सकते हैं। इस पद्धतिसे विशेषवादमें कुछ भेद भी किया, लेकिन उनमेंसे अनेक भेद तो एक दूसरे समानजातीय मिलनके कारण किसी जातिमें गर्भित हो जाते हैं। और, कुछ पदार्थ उन द्रव्योंके प्रकारमें आ ही नहीं पाये। तो यों द्रव्योंके भी प्रकार संख्या नहीं बनती। यों विशेषवादमें कल्पित द्रव्य गुण कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इन छहों पदार्थोंके स्वरूपकी व्यवस्था नहीं बन पाती और फिर जब स्वरूपकी व्यवस्था नहीं है तो उनमें संख्याकी सिद्धि करना कैसे सम्भव है ?

प्रमेय और उसके प्रकारोंकी पद्धति—आत्महितके लिए प्रमाण और प्रमेय स्वरूपकी व्यवस्था बनाना, समझ करना बहुत आवश्यक है। इसलिए इसका प्रकरण और प्रमेयसे चला। प्रमाण है ज्ञानात्मक और प्रमेय है ज्ञेयस्वरूप। तो प्रमाण भी निर्दोष बुद्धिमें रहना चाहिए और प्रमेय भी निर्दोष रूपसे बुद्धिमें आना चाहिए। यदि प्रमाण प्रमेयका स्वरूप ज्ञानमें रहता है तो उस जीवको लोकमें कहीं भी संकट नहीं और निःसंकट अविकारी निज सहज स्वरूपमात्र अंतस्तत्त्वके अभ्यास बलसे रहे सहे संकटोंका मूलसे विनाश हो जाता है। तो प्रमेयका स्वरूप केवल इतना कहनेसे ही पर्याप्त आ जाता है कि प्रमेय सामान्य विशेषात्मक होता है। अब उस सामान्य विशेषात्मक पदार्थमें अर्थ क्रियाकी जातिके भेदसे प्रकार बनाना ये तो है तथ्यभूत पदार्थके प्रकार, लेकिन इस पद्धतिको छोड़कर इन्द्रियजन्य बुद्धिमें जो कुछ समझमें आया उसको ही प्रतिपादन करना इस नीतिमें कुछ पदार्थ अधिक संख्यामें आ जायेंगे और कुछ पदार्थ मूलसे ही छूट जायेंगे। तो सामान्य विशेषात्मक प्रत्येक पदार्थको मानकर फिर उसमें अर्थ क्रियाकी पद्धतिसे भेद बनायें तो पदार्थके भेद सही सिद्ध होंगे, और वे भेद सिद्ध होते हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन ६ जातियोंके रूपमें। इसके विरुद्ध केवल सामान्य मात्र, केवल विशेषमात्र, केवल गुण मात्र, केवल क्रियामात्र अथवा समवाय ही और शब्द, सूत्र, द्रव्य यह सब स्वरूप व्यवस्था नहीं हो सकती अतएव विशेषवाद सम्मत ६ जातिके पदार्थोंकी व्यवस्था एवं संख्या सिद्धिका नियम सही नहीं बनता।

यौगाभिमत सोलह पदार्थोंका विशेषवादमें वर्णन न होनेसे उनकी पदार्थ संख्याका विघात—विशेषवादमें ६ प्रकारके पदार्थ माने गए हैं, लेकिन विशेषवादी यह बतायें कि नैयायिकके द्वारा माने गए १६ पदार्थोंको आप क्या कहेंगे ? तब तो ६ पदार्थोंसे अधिक पदार्थ मानने पड़े ना ? नैयायिक सिद्धान्तमें १६ पदार्थ माने गए हैं प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क निर्णय, वाद, जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रह। इन सबके स्वरूप भी अपने आपमें न्यारे न्यारे हैं। प्रमाण नाम है दृढ़ बोधका, जिससे कि वस्तुके स्वरूपकी व्यवस्था प्रबल पद्धतिसे बनायी जाती है, उस प्रमाणका कहाँ अन्तर्भाव करोगे ? सबके स्वरूप जुदे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

और नीचे अच्छे ढंगसे दूध ही दूध रहे। तो देखो ! युतसिद्ध हैं दोनों। पानी पानी है दूध–दूध है, लेकिन पृथक् सिद्ध होनेपर भी अब दूधमें पानी मिला दिया जाय तो पानीकी उपरितम रूपसे प्रतीति नही हो रही है। या पहिले किसी बर्तनमें थोड़ा सा पानी पड़ा हो और उसमें फिर दूध डाल दें तो वहां आधार हो गया पानी और आधेय हो गया दूध। याने पानीमें दूध मिलाया, लेकिन पानी व दूध युतसिद्ध होनेपर भी दूध पानीके ऊपर ही ऊपर तैर रहा हो, ऐसी प्रतीति तो नही हो रही। इससे यह कहकर आक्षेपसे बच जानेकी कोशिश विफल हो जाती है। क्या कहकर कि जो युत सिद्ध होता है उसकी ही ऊपर ऊपर प्रतीति होती है, लेकिन घट और रूप ये युत सिद्ध नही हैं इस कारण इनकी अंत, और बहिरङ्ग प्रतीति होती है। तो अंतः बहिरङ्ग प्रतीति होनेसे यह निर्णय हुआ कि वह आधेय नही है। बात यह है कि वस्तुका ही ऐसा स्वरूप है जो वस्तुमें वह मिला हुआ ही है, तो इस तरह समवायके सम्बन्धमें बहुत विचार करनेके बाद यही प्रमाण प्रसिद्ध निर्णय है कि समवाय नामका कोई पदार्थ नही है।

समवाय पदार्थकी असिद्धि व सामान्यविशेषात्मकताके विरुद्ध अभिमत षट पदार्थ संख्याका विघात—यहां तक जो वर्णन हुआ है उस वर्णनसे यह निर्णय किया गया कि विशेषवादमें माने हुए जो पदार्थकी संख्या है द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष, समवाय, विचार करनेपर इन पदार्थोंके स्वरूपकी व्यवस्था नही बनती। फिर यह निश्चय अवधारण कैसे घटित किया जा सकता है कि पदार्थ ६ ही होते हैं जिनको पदार्थ कहा गया है उन पदार्थोंकी सिद्धि नही हो रही और जिनकी कुछ सिद्धि भी है तो उनके भेद लक्षण आदिक सब अटपट किये जा रहे हैं तो यह अवधारण कैसे घटित हो सकता कि पदार्थ ६ ही होते हैं। देखो—समवाय नामका कोई पदार्थ नही है। जिसके प्रदेश हों जिसमें परिणमन हो, जिसकी एकत्व व्यक्त हो, नित्यानित्यात्मक हो, बने, बिगड़े, बना रहे, ऐसी तीन बातें जिसमें हो, पदार्थ तो वही हो सकता है। और फिर समवायको सर्वव्यापी एक कहना और हर समवायियोंमें समवायसे भिन्न-भिन्न धर्मका सम्बन्ध कराना ये सब बातें अनुपयुक्त हैं। इसी प्रकार सामान्य और विशेष नामका भी कोई पदार्थ नही है। सामान्य धर्म समझ में आ रहा है। विशेषधर्म भी बुद्धिमें आता है लेकिन सामान्य और विशेष तो सद्भूत पदार्थके ही धर्म हैं। ये स्वयं पदार्थ हो गए हों ऐसी बात नही है। इसी प्रकार कर्म, क्रिया, परिणति, पर्यायकी भी बात है। ये भी कोई पदार्थ नही हैं। किन्तु पदार्थोंकी एक स्थिति है। इसी प्रकार गुण भी कोई पदार्थ नही हुआ करते। गुण तो द्रव्यके अभिन्न स्वरूप हैं। जो कुछ पदार्थका अभिन्न स्वरूप है उस ही स्वरूपसे जब समझा जा रहा तो भेदबुद्धि करके उनका बिस्तार बनाकर समझाया करते हैं। तो गुण भी कोई पदार्थ नही है। पदार्थ रहा केवल द्रव्य। तब द्रव्य कहो, पदार्थ कहो, एक ही पर्यायवाची शब्द हुए। अब द्रव्योंमें अर्थक्रियाकी पद्धतिसे भेद किया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बाहर सत्त्वसे हैं और रूप घड़ेके रग–रगमें, अणु–अणुमें अन्दर बाहर सर्वत्र सत्त्व-रूपसे है। जो केवल बाहर ही बाहर सत्त्वरूपसे हो वह आधेय हुआ करता है। देखो! कुण्ड आदिक अधिकरणोंमें बेर आदिक कुण्डके अन्तः नहीं होते। आधारभूत पदार्थसे बाहर ही सत्तासे रहते हैं, है उनका सम्पर्क। पर, इस तरह गुण आदिकमें आधेयपनेका प्रतिभास नहीं हो रहा।

अन्य युतसिद्धत्वके कारण ही उपरितनमात्रका प्रतिभास होनेसे गुणोंमें आधेयत्वके प्रतिषेधकी अशक्यताकी शंका—शंकाकार कहता है कि रूप आदिक गुणोंमें आधेयता होनेपर भी युतसिद्धिका अभाव है, इस कारणसे उपरितन रूपसे प्रतिभासमान हो, यह बात नहीं बन पाती। याने आधेयताका लक्षण तो हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि जो आधारभूत पदार्थके ऊपर ही ऊपर प्रतिभासमान हो सो आधेय है लेकिन यह रूप द्रव्यसे युतसिद्ध नहीं है। जैसे कि घड़ेमें बेर यह युत-सिद्ध है। घड़ा पृथक् सिद्ध है, बेर बिल्कुल प्रथक् सिद्ध है। इनका एक क्षेत्रा-वगाह नहीं, वे एक हीमें समाये हुए नहीं, अथवा तखतपर चटाई। तो यहां आधेय तो हुई चटाई, आधार हुआ तखत। तो आधेय चटाई भी तखतके बाहर ही बाहर है। तखतका निजका जैसा रूप है वह तो बाहर ही बाहर नहीं अन्तः बाहर सर्वत्र है। तो इसमें यह अन्तर क्यों पड़ गया? यों कि रूप और घट ये युतसिद्ध नहीं। तखत और रूप ये युतसिद्ध नहीं, और चटाई तखत ये युतसिद्ध हैं, तो जो पृथकसिद्ध हों उनमें तो यह बात प्रतिभासमें आ जाती है कि आधेय बाहर ही बाहर लोटता रहता है, लेकिन जो युतसिद्ध हैं वे आधेय होकर भी उनमें इस तरहका प्रति-भास नहीं हो पाता कि ये बाहर ही बाहर रहा करें। इस कारण बाहर हीं प्रतिभास का अभाव है ऐसा हेतु देकर गुणोंकी आधेयताका निराकरण नहीं कर सकते।

अनेक युक्तियोंसे गुणोंमें अनाधेयत्वकी सिद्धि—उक्त शंकाके समाधान में कहते हैं कि यह बात ठीक नहीं जचती, क्योंकि बाहर ही बाहर प्रतीतिमें आये, इसका कारण युतसिद्धपना नहीं है अर्थात् जो युतसिद्ध हों उनमें ही यह बात बनेगी कि वे बाहर ही बाहर प्रतिभासमें आयें कि जैसे कि घड़े और बेरका दृष्टान्त दिया कि युतसिद्ध हैं और इसी कारण ये घट मिट्टीके ऊपर ही ऊपर रहते हैं। तो इस तरह व्याप्ति सर्वत्र नहीं बन सकती है और इसी कारण ऊपर ही ऊपर प्रतिभासमें आया हुआ वस्तु आधेय है इसका कारण युतसिद्धपना नहीं है। अन्यथा अर्थात् यह हठ यदि करली जाय कि युतसिद्धपना होनेके ही कारण बाहर ही बाहर वस्तुकी प्रतीति होती है आधेयकी, तो बतलावो कि क्षीरमें नीर मिला दिया। दूध और पानी आपसमें मिला दिये गए तो अब क्षीरमें नीर मिलाया ना। दूध रखा था बर्तनमें और उसमें मिला दिया पानी तो इनमें आधार रहा दूध और आधेय रहा पानी। लेकिन वहां क्या ऐसा प्रतिभासमें आ रहा है कि पानी दूधके ऊपर ही ऊपर प्रतिभासमें आया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जगह रहे उसे महापरिमाण कहते हैं। तो अब गोत्वमें गाय है ऐसा कोई नहीं कहता और गायमें गोत्व है ऐसा दुनिया कहती है-- जैसे मनुष्य और मनुष्यत्व। मनुष्य तो हुए व्यक्तिरूप और मनुष्यत्व हुआ सामान्य। तो महापरिमाण किसका है मनुष्यत्वका जो सब मनुष्योंमें रहे ऐसा जो मनुष्यत्व है वह तो महापरिमाण वाला हुआ। लेकिन मनुष्यमें मनुष्य है आधार और मनुष्यत्व है आधेय, तो देखो! यहां महापरिमाण गुण वाला सामान्य अब आधेय न बन सकेगा। उसमें अनाधेयताका दोष आ जायगा, इस कारण। यह पक्ष तो नहीं कह सकते कि अल्प परिमाण होनेसे गुणोंमें आधेयता है। महापरिमाण वाला भी आधेय कहा गया है और इसी कारण दूसरा विकल्प भी नहीं कह सकते कि समवायीका कार्य होनेसे समवाय आधेय है या द्रव्यका कार्य होनेसे गुण आधेय है या आधारका कार्य होनेसे आधेय कहलाता है। यह यों नहीं कह सकते कि देखो! सामान्य तो आधेय है और व्यक्तिका कार्य नहीं है। सामान्य तो व्यापक है और आकृत है। तो कार्यपनेकी बात यहां तो घटित न हुई। कार्य न होकर भी सामान्य आधेय है। तो समवायमें आधेयता कैसे सिद्ध हो सकेगी। समवायकी भी बात सुन लो! तंतुमें पटका समवाय है तो तंतु तो अल्प परिमाण वाली चीज है, पट भी अल्प परिमाण वाली चीज है। और समवाय सारे विश्वमें व्यापक और एक चीज है। तो ऐसे परिमाण वाला समवाय आधेय न बन सकेगा। चले तो थे छबे होनेको और दूबे ही रह जावोगे। और, इसी प्रकार तंतु और पटका कार्य नहीं है समवाय, इस कारण भी समवायको आधेय नहीं कह सकते। यों अल्पपरिमाण होनेसे और आधारका कार्य होनेसे आधेय कहलाता हो, यह विकल्प संगत नहीं होता है।

आधेयतया प्रतिभासरूप होनेसे गुणोंमें आधेयता मानने रूप तृतीय विकल्पका निराकरण—अब शंकाकार कहता है कि गुणत्व आदिककी आधेयता तृतीय विकल्पसे मान लीजिये अर्थात् ये सब आधेयरूपसे प्रतिभात होते हैं इस कारण ये गुण आदिक स्पष्ट आधेय हैं। समाधानमें कहते हैं कि यह तीसरा विकल्प भी बिना विचार किए ही सुन्दर लग रहा है। इसपर विचार करिये तो पता पड़ेगा कि उन गुण आदिकका आधाररूपसे प्रतिभास नहीं होता। ये गुण द्रव्यमें आधेयरूपसे नहीं रहते, इसका प्रमाण यह है कि रूप आदिक गुण अपने आधारभूत घट पट आदिकमें भीतर और बाहर रहा करते हैं। आधेय तो वह होता है जिसका बाहर ही सत्त्व हो। भीतर सत्त्व न हो। जैसे कि घड़ेमें बेर रखे हैं तो बेरका सत्व घड़ेकी जो मिट्टी है उसके भीतर तो नहीं पड़ा है उसके ऊपर ही ऊपर सत्त्व है। तो आधेय वही होता जिसका बाहर ही बाहर सत्त्व है। लेकिन रूप आदिक गुणोंकी तो अन्तरङ्गमें और बहिरङ्गमें सर्वत्र वृत्ति है। जैसे घड़ेका रूप घड़ेके बाहर भी दिखता, घड़ेकी पपड़ीके अन्दर भी है। हर हालतमें है। तो जो अन्तरङ्ग बहिरङ्ग सब जगह सत्त्वरूपसे है उसको आधेय नहीं कह सकते। घड़ेमें रूप है ऐसा कहना और घड़ेमें चना है ऐसा कहना, इनमें कुछ अन्तर नहीं है क्या? चने तो बाहर ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रखते हैं, किस प्रकार कि संयोगी द्रव्यके तो सक्रिय होनेसे आधार आधेयभावकी प्रत्यक्षसे प्रतीति होती है। जैसे पानी डाला, घट भर गया तो पानी आधेय है और घट आधार है। तो संयोगी पदार्थोंमें आधार आधेय भावके प्रत्यक्षसे जानकारी सक्रिय होने के कारण हो रही है, लेकिन गुणोंके निष्क्रिय होनेपर भी आधार आधेयभावकी प्रत्यक्ष से प्रतिती होती है, क्योंकि संयोगी द्रव्यसे गुण विलक्षण हैं और यह अपने जुदे जुदे पदार्थकी प्रकृति है. इस कारण यह आक्षेप देना कि समवाय आधेय हुआ ही नहीं करता, क्योंकि निष्क्रिय है यह आक्षेप युक्त नहीं है।

गुणादिकोंकी आधेयताकी शंकाके समाधानमें तीन विकल्पोंके रूपमें पृच्छा – समाधानमें कहते हैं कि शंकाकारका यह कहना कि गुणत्व आदिकमें संयोगी द्रव्यसे विलक्षणता है इस कारण संयोगी द्रव्य सक्रिय होनेसे आधार आधेय भाव युक्त रहे, लेकिन गुण तो निष्क्रिय होनेपर भी आधार आधेयभावसे युक्त होते हैं यह कहना असंगत है, क्योंकि बताओ गुणोंके निष्क्रिय होनेपर भी गुणोंमें जो आधेयपना आता है वह किस कारणसे आता है ? क्या अल्प परिमाण होनेसे आता है ? या द्रव्य अथवा आधार आदिकका कार्य होनेसे आता है, या आधेयरूपसे वे प्रतिभास होते हैं इस कारणसे उनमें आधेय पना आता है ? इन तीन विकल्पोंमेंसे कौनसा इष्ट है ? इन तीनों विकल्पोंका तात्पर्य यह है कि गुणोंका परिमाण अल्प है, द्रव्यका परिमाण अधिक है इस लिए अधिकमें छोटेका आधेयपना बन जायगा। बड़ीमें छोटी चीज समाती भी है। आकाशमें पृथ्वी है ऐसा लोग कहते ही हैं, घड़ेमें पानी है। तो अल्प परिमाण होनेसे क्या गुणोंमें आधेयता मानते हो अथवा द्रव्यका कार्य है गुण इसलिए आधेय मानते हो ? जैसे अग्निका कार्य है धूम। तब धूम तो आधेय हो गया और अग्नि आधार हो गयी। ऐसा अब लोग निर्विवाद कहते हैं। तो क्या यह आपका भाव है कि गुण जो है वह गुणीका कार्य है इस कारण गुणी आधार है और गुण आधेय है। उनमें वह समवाय समवायीका कार्य है इसलिए समवायी आधार हो जाय और समवाय आधेय हो जाय, क्या यह मतलब है ? अथवा यह तात्पर्य है कि गुण तो स्पष्ट आधेयरूपसे प्रतिभासमें आ ही रहे ? इन तीन विकल्पोंमेंसे कौनसा विकल्प विशेषवादी स्वीकार करते हैं ?

अल्पपरिमाणत्व अथवा तत्कार्यत्व हेतुसे समवायके आधेयत्वकी सिद्धिका अभाव—उक्त तीन विकल्पोंमेंसे यदि पहिला पक्ष स्वीकार करोगे कि अल्प परिमाण होनेसे गुणोंमें आधेयपना आता है तो यह प्रथम पक्ष अयुक्त है क्योंकि आपका यह नियम सर्वत्र घटित नहीं हो सकता कि महोपरिमाण वाली चीजतो आधार होती है और अल्प परिमाण वाली चीज आधेय होती है देखो ! व्यक्तिरूप गाय है और एक गोत्व सामान्य है बतलावो व्यक्तिरूप गायका परिमाण बड़ा है या गोत्व सामान्यका परिमाण बड़ा है ? सामान्यका परिमाण बड़ा माना गया है। जो बहुत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि समवायमें जो समवायित्व पाया जा रहा है वह स्वत: ही है तब तो ठीक है। यों ही सर्व पदार्थोंमें जो कुछ धर्म पाये जा रहे हैं वे भी स्वत: हैं। तब समवाय नामक सम्बन्धकी कल्पना करनेसे कोई लाभ नहीं है। सब पदार्थ हैं अपने स्वभावरूप हैं, उनको समझनेके लिए भेदबुद्धिसे गुण और पर्यायोंकी कल्पना की जाती है। जब कुछ न्यारे न रहे धर्म धर्मी, तो फिर समवाय सम्बन्धकी कल्पनासे लाभ ही क्या है? सभी पदार्थ स्वत: सिद्ध निष्पन्न हैं।

संयोग पदार्थकी सिद्धि न होनेसे शंकाकारके आक्षेपका अनवकाश— शंकाकार कहता है कि समवायके निराकरणमें जो युक्तियाँ दी हैं कि समवायके द्वारा समवायियोंका समवायित्व अभिन्न किया गया है या भिन्न किया गया है? और, ऐसा विकल्प उठाकर उनपर आक्षेप किया है। तो ऐसी बात तो हम संयोगमें भी कह सकते हैं कि संयोगके द्वारा संयुक्त पदार्थोंमें जो संयुक्तत्व किया गया है वह उससे भिन्न है अथवा अभिन्न है? और, भिन्न अभिन्न विकल्प उठाकर उस ही प्रकार यहाँ आक्षेप भी किया जा सकता है तो यह तो शब्द जालसे मुह बन्द करनेकी बात हुई। समाधानमें कहते हैं कि यह भी कथन अयुक्त है क्योंकि संयोग भी पदार्थ नहीं संश्लिष्ट रूपसे उपपन्न वस्तुके स्वरूपको छोड़कर अन्य कुछ संयोग नहीं होगा। जब संयोग नामका पदार्थ ही नहीं है तो उसकी विधि करना उसके बारेमें आक्षेप, प्रत्याक्षेप करना ये सब अनुचित बातें हैं। यदि कोई भिन्न संयोग नामका पदार्थ तुम मानोगे, आग्रह करोगे तो संयोगियोंके समवायमें भी ये सारे आक्षेप बराबर समान हो सकते हैं कि संयोगियोंमें जो संयुक्तत्व किया जाता है संयोगके द्वारा वह अभिन्न है अथवा भिन्न है? जो कुछ भी आक्षेप है जैसे अभिन्न होनेपर आकाश आदिकमें भी संयोग बन बैठे, भिन्न होनेपर सम्बन्धत्वकी उत्पत्ति नहीं होती। सम्बन्धान्तर माननेपर अनवस्था दोष होगा। संयोगसे संयोगका नियम करनेपर अन्योन्याश्रय होगा। वे सारेके सारे आक्षेप बराबर संयोगमें भी लग सकेंगे। लेकिन संयोग नामका कुछ पदार्थ ही नहीं तो उसके बारेमें बात करनेसे लाभ क्या?

निष्क्रियत्व होनेपर भी गुणत्वादिकोमें आधेयत्वका शंकाकार द्वारा कथन— शंकाकार कहता है कि समवायका निषेध करनेके लिए जो यह बात कही गई है कि संयोग समवाय आदिक तो आधेय भी नहीं हो सकते क्योंकि वे निष्क्रिय हैं। आधार आधेयपना तो वहाँ बने कि आधेय चीजमें क्रिया हो और वह अपने वेगसे चले और उसका प्रतिषेध करने वाला कोई पदार्थ हो तो वह आधार बन जायगा। लेकिन जब समवाय आदिक निष्क्रिय हैं तो उनका आधेयपना ही कैसे सम्भव है? और, फिर यों कहना कि समवायीमें समवाय है यह कैसे ठीक है? यह आक्षेप देना ठीक नहीं है, क्योंकि गुण आदिक संयोगी द्रव्यसे विलक्षण हुआ करते हैं, द्रव्यमें क्रिया होती है, संयोगी द्रव्य क्रिया करने लगे, पर गुण आदिक तो संयोगी द्रव्यसे विलक्षण महिमा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सम्बन्ध असमवायीमें हो जाता है तब तो घट पट इनमें भी समवाय सम्बन्ध लग जाना चाहिए क्योंकि घटका पट समवायी नही पटका घट समवायी नही। समवायीका शीघ्र अर्थ समझना हो तो उपादानके रूपमें समझलें। जैसे पटका उपादान तंतु है तो तंतुमें पटका समवाय मान लिया। पर घट और पट ये दोनों एक दूसरेके उपादान नही हैं। क्या घटसे पट बनता है या पटसे घट बनता है ? तो ऐसे अत्यन्त भिन्न घट पट जैसे अर्थोंमें भी समवायका प्रसंग हो जायगा, क्योंकि अब तो असमवायीमें भी समवायकी कल्पना करने लगे। यदि कहो कि समवाय सम्बन्ध समवायीमें भी होता है तो यह बतलावो कि उन दोनोंका समवायीपना कहांसे आया क्या समवायसे आया या स्वत: आया ? जैसे तंतु और पट इनमें समवाय मानते हैं ना, तो समवायी हुए वे तंतु पट, अब इनमें जो समवाय सम्बन्ध बनानेके लिए समवायीपना माना गया और समवायीमें मानते हो समवाय सम्बन्ध तो बताओ कि ये समवायी कैसे बन गए ? यदि कहो कि समवायसे बन गए तो इसमें इतरेतराश्रय दोष आता है। जब समवायपना उन दोनोंका सिद्ध ही ले जिनमें कि समवाय सम्बन्ध थापना है तब तो समवायीका भाव याने, समवायित्व सिद्ध हो अथवा समवायी सिद्ध हो और जब समवायी सिद्ध हो तब समवायियोंमें समवाय सिद्ध हो। इस कारण समवायसे समवायियोंमें समवायका सम्बन्ध हो जाय यह बात नियमित नही घटती।

समवाय द्वारा समवायियोंमें समवायित्वकी अभिन्न अथवा दोनों रूपसे किये जानेकी असिद्धि—और, फिर यह बतलावो कि उस समवायके द्वारा समवायियोंमें जो समवायित्व पैदा किया गया है वह भिन्न किया गया या अभिन्न ? याने समवायियोंमें समवायित्व है, यह किया है समवायने, तो वह अभिन्न किया गया या भिन्न किया गया ? यदि कहो कि अभिन्न किया गया तो आकाश आदिकमें भी समवायित्वकी बात बननेका प्रसंग आयगा याने शब्द और आकाश इन दोनोंसे समवायियोंसे अभिन्न रहने वाला समवायित्व समवायके द्वारा बन जायगा। यदि कहो कि समवायके द्वारा समवायियोंमें भिन्न समवायित्व किया जा रहा है तो जब भिन्न ही है समवायियोंका समवायित्व तो फिर संबंध बन ही नहीं सकता। भिन्न भिन्न दो पदार्थोंका संबन्ध बननेका क्या प्रश्न है ? यदि कहो कि अन्य संबंधकी कल्पना कर लेंगे उन समवायी और समवायित्वके संबंधके लिए अन्य संबंधकी कल्पना कर लेंगे तो अनवस्था दोष होता है। अब उसमें समवायित्वकी कल्पना करनेके लिए संबंधान्तर मानना पड़ेगा। और यदि कहो कि उस ही समवायसे समवायियोंमें समवायित्वके संबंधत्वको बना देंगे तो इसमें इतरेतराश्रय दोष होगा कि समवायियोंका समवायित्व नियम सिद्ध हो तब तो समवाय नियमकी सिद्धि होगी। और जब समवाय नियमकी सिद्धि होगी तब यह उसका ही समवायित्व है यह सिद्ध बन पायगा। इससे समवायियोंका समवायित्व न तो भिन्न रूपसे समवायमें कर पाया और न अभिन्न रूपसे कर पाया। तो यों समवायसे समवायका समवायित्व न बन सका। अब यदि यह कहोगे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समवाय असम्बद्ध होकर कार्य करने लगेगा क्योंकि जो असम्बद्ध हो उसमें सम्बन्ध रूपता किसी तरह आ ही नही सकती जैसे घट पट आदिक पदार्थ हैं, ये असम्बद्ध हैं। सम्बन्ध स्वरूपता इनमें फिर नही आ सकती। यदि कहो कि असम्बद्धमें भी सम्बन्ध रूपता सम्बन्ध बुद्धिके हेतुपनेसे आ जायगा अर्थात् सम्बन्धबुद्धि जो हो रही है उस हेतुसे असम्बद्धमें सम्बद्धरूपता सिद्ध हो जायगी। उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा माननेपर महेश्वर आदिकमें भी सम्बन्धरूपताका प्रसंग आ जायगा, क्योंकि विशेषवादमें जब समस्त जगतको महेश्वर कर्तृक माना है तो सम्बन्धबुद्धिके भी महेश्वर हेतु बनेंगे। जो सारे जगतको रच देता है वह पुरुषोंकी बुद्धिको न रच सकेगा क्या? तो सम्बन्धबुद्धि के हेतु इस दृष्टिसे महेश्वर भी बन गये और जो सम्बन्धबुद्धिका हेतु होता है वह सम्बद्ध रूप होता है यह बात इस प्रसंगमें विशेषवादी स्वयं कह रहा है। तो यों महेश्वर आदिकमें भी सम्बन्धरूपताका प्रसंग आ जायगा।

असम्बद्ध अदृष्टमें समवायीमें समवायके सम्बन्धबुद्धि निबन्धनताका अभाव—एक स्पष्ट बात यह भी है कि असम्बद्ध होकर कोई समवायी पदार्थ उस सम्बन्धबुद्धिका कारण कैसे बन जायगा? अलग–अलग हैं पदार्थ। समवाय अलग है, असम्बद्ध है, तो वह किसी दूसरेके सम्बन्धबुद्धिका कारण कैसे बन जायगा? जैसे अंगुलियाँ अलग–अलग हैं, घटसे जुदी हैं तो जब घटसे अंगुलियोंका संयोग ही नही है, असम्बद्ध है तो सम्बन्धबुद्धिका कारण तो नही बन गया। इस बातकी सिद्धिका अनुमान प्रयोग भी है—इस आत्मामें ज्ञान है, इस प्रकारकी जो सम्बन्धबुद्धि हो रही है वह सम्बन्धीसे सम्बद्ध सम्बन्धपूर्वक नही होती है, क्योंकि सम्बन्धबुद्धि होनेसे। जैसे दण्ड व पुरुषकी सम्बन्धबुद्धि। दण्ड व पुरुषमें सम्बन्धबुद्धि हो रही है ना? तो वह दण्ड व पुरुष, ये दो हुए, तो ये इन सम्बन्धियोंसे असम्बद्ध रहे ऐसे कि सम्बन्धके कारण सम्बन्धबुद्धि होती हो सो नहीं, इस अनुमानसे भी इस मंतव्यका विरोध हो जाता है। तो यों अनेक प्रकारसे विचार करनेपर यह सिद्ध होता है कि समवाय नाम का तो कुछ पदार्थ है ही नही। और कल्पनामें भी मान लो है समवाय, तो समवायका समवायीमें समवाय होता है, गुण गुणियोंमें समवाय होता है, यह भी सिद्ध नही होता क्योंकि वे सब एकरूप हैं। गुण गुणीसे पृथक नही है। जो भी अखण्ड द्रव्य है उसकी ही विशेषता गुण है।

समवायी अथवा असमवायीमें समवायकी परिकल्पनाकी असिद्धि—अब और भी बात पूछ रहे हैं कि यह समवाय समवायीमें माना जा रहा है या असमवायीमें? समवाय तो कहलाता है वह अभिन्न तत्व जिसमें जो स्वतः मौजूद है अथवा कहो उपादान और उसका कर्म। असमवायी वह कहलाता है जो समवायी नहीं है, उपादान नही है। तो यहाँ यह बतलावें विशेषवादी कि समवाय जो माना गया है सो वह समवायीमें ही माना है या असमवायमें? यदि कहो कि समवाय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भरके समवायी पदार्थोंमें समवाय सम्बन्धको जोड़ता फिरे, यह अदृष्ट कैसे हो सकता है। और, कदाचित् मानलो कि अदृष्टके द्वारा समवायी और समवायमें सम्बन्ध जुट गया तो वह भी एक सम्बन्धरूप बन गया। तब सम्बन्ध ६ हुआ करते हैं इस सिद्धान्तका घात हो गया। संयोग, समवाय, संयुक्त समवाय, संयुक्त समवेत समवाय, वाच्य वाचक भाव, विशेष्य विशेषण भाव। इनके अतिरिक्त अब यह आ गया अदृष्ट, सो सम्बन्ध ६ प्रकारके हैं इस विशेषवादके सिद्धान्तका भी अब घात हो गया। अदृष्ट की संबंधहेतुकताके सम्बन्धमें दूसरी बात यह है कि यदि अदृष्टके द्वारा समवाय सम्बन्धित होता है याने समवायी पदार्थमें समवायका सम्बन्ध अदृष्टके द्वारा किया जाता है तो फिर गुण गुणी आदिक भी अदृष्टके द्वारा सम्बद्ध हो जायें। गुणीमें गुण का सम्बन्ध अदृष्टके कारण हो जाय, इसमें क्यों आपत्ति आये? और, तब फिर समवाय आदिककी कल्पना करना भी व्यर्थ है, क्योंकि अब अदृष्टके द्वारा गुण गुणीका भी सम्बन्ध बन गया, सर्व सम्बन्ध बन जायगा। फिर समवाय पदार्थकी कल्पना निरर्थक है।

असम्बद्ध अथवा सम्बद्ध दोनों विकल्पोंमें भी अदृष्ट द्वारा समवायियों में समवायके सम्बंधकी असिद्धि —अब यह बात बतलावो कि जिस अदृष्टके द्वारा आप समवाय और समवायीमें सम्बन्ध करा देना चाहते हैं वह अदृष्ट क्या असम्बद्ध होकर समवायके सम्बन्धका कारण होता है या सम्बद्ध होकर समवायके सम्बन्धका कारण बनता है? याने अदृष्ट सबसे निराला रहकर ही समवाय और समवायमें सम्बंध बता देता है यह भाव है क्या आपका या अदृष्ट भी खुद सम्बद्ध होकर उन समवाय समवायियोंमें घुल मिलकर उनके सम्बन्धका कारण बनता है, यह आपका भाव है? यदि कहो कि असम्बद्ध होकर ही अदृष्ट समवायके सम्बन्धका कारण बनता है तो इसमें तो अतिप्रसंग आयगा। अनेक पदार्थ स्वतंत्र हैं, परिपूर्ण हैं, असम्बद्ध हैं, फिर तो कोई भी किसीके सम्बन्धका कारण बन बैठेगा! यदि कहो कि सम्बद्ध होकर ही अदृष्ट समवायके सम्बन्धका कारण होता है तब यह बतलाओ कि अदृष्टका सम्बन्ध कैसे हुआ समवायके साथ? क्या समवायसे हुआ अथवा किसी अन्यसे हुआ? यदि अदृष्टका उन समवाय समवायियोंमें सम्बन्ध समवायसे मानते हो तो इसमें इतरेतराश्रय दोष आता है। जब समवायकी सिद्धि हो चुके तब तो समवायके साथ अदृष्टका सम्बन्धपना सिद्ध हो और, जब समवायके साथ अदृष्टका सम्बन्धपना सिद्ध हो ले तब यह कहा जा सकेगा कि सम्बद्ध अदृष्ट समवायका कारण होता है। तो अन्योन्याश्रय दोष होनेसे अदृष्ट सम्बद्ध होकर समवायके सम्बन्धका कारण होता है, यह विकल्प सही नहीं उतरता। यदि कहो कि अदृष्ट अन्यसे सम्बद्ध होकर समवायके सम्बन्धका कारण बन जाता है तो यह बात यों अयुक्त है कि ऐसा विशेषवादमें माना ही नहीं गया। समवायको स्वतः सम्बद्ध माना है। इस प्रकार यह सिद्ध नहीं होता है कि समवाय सम्बद्ध होकर या अदृष्टके द्वारा सम्बन्ध पा कर समवायीमें अपना अड्डा जमाता है यह भी नहीं कह सकते कि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अब विशेषणभावको यदि सामान्य मान लिया जाय तो मान लो सामान्य, पर अब समवायमें विशेषण विशेष्य भाव न आ पायगा । विशेषणभावको विशेष नामका पदार्थ भी नही मान सकते, क्योंकि कहा गया है कि विशेष नित्य द्रव्यके आश्रित होता है । वैशेषिक सिद्धान्त है यह कि नित्य द्रव्यमें रहने वाले विशष हुआ करते हैं । अनित्य द्रव्यमें विशेषण भावकी उपलब्धि होनेसे समवायमें अभावका प्रसंग हो जायगा एक साथ अनेक समवायियोंका विशेषण होनेपर फिर सो समवाय अनेक बन जायेंगे । विशेषणभाव यदि समवायीके विशेषण हैं तो जितने समवायी हैं उतने ही समवाय माने जायेंगे । यहांपर भी जो पदार्थ एक साथ अनेक पदार्थोंका विशेषण होता है वह अनेक माना गया है, देखा गया है । जैसे दंड कुण्डल आदिक अनेक पदार्थ विशेषण एक साथ हैं और अनेक विशेष्य हैं । तो उसी प्रकार एक साथ अनेक पदार्थों का विशेषण यदि समवाय बन गया, जैसे कि इस प्रसंगमें मानना पड़ रहा है। तो इसका निष्कर्ष यह है कि फिर समवाय अनेक हो गया । यहां यह व्याप्ति बनी कि एक साथ अनेक पदार्थोंका जो विशेषण होता है वह अनेक होता है तो इस प्रकार तो अब लो समवाय भी एक साथ अनेक पदार्थोंका विशेषण बन गया ना ! सभीमें एक साथ समवाय है अनेक पदार्थोंका तब समवाय अनेक मानने पड़ेंगे । यहाँ कोई यह सन्देह न करे कि फिर सत्व आदिकके साथ अनेकान्त हो जायगा कि देखो सत्व तो एक है मगर एक साथ अनेक पदार्थोंमें रह रहा है। ऐसा संदेह यों न करना चाहिये कि सत्वमें भी अनेक स्वभाव पड़े हुए हैं । जैसे—पट सत् है, घट सत् है । जितने पदार्थोंमें सत्वका सम्बन्ध है उतने ही सत्व विशेषण हैं । अनेक स्वभावता पूर्वक सत्व देखा जाता है । इस कारण यह कहना अयुक्त है कि विशेषण भावसे समवाय समवायियोंमें सम्बद्ध हो जाता है इस तरह तीसरे विकल्पका भी निराकरण किया गया ।

सम्बन्धरूपत्वरहित अदृष्टसे समवायके सम्बन्धकी सिद्धिका अभाव— समवायीमें समवायका सम्बन्ध परसे होता है तो उस सम्बन्धमें पूछा जा रहा था कि समवायीका सम्बन्ध संयोगसे होता या समवायान्तरसे होता या विशेषण भावसे होता अथवा अदृष्टसे होता ? इन चार विकल्पोंमेंसे आदिके तीन विकल्पोंका तो निराकरण कर दिया, अब चतुर्थ विकल्पकी चर्चा चल रही है । समवायीमें समवायका सम्बन्ध अदृष्टसे भी नही हो सकता, क्योंकि अदृष्ट सम्बन्धरूप नही है । अदृष्ट है, पुन्य पाप कर्म है मगर वह सम्बन्धस्वरूप तो नहीं जिसके द्वारा समवायका सम्बन्ध कर दिया जा सके । सम्बन्ध होता है दो पदार्थोंमें ऐसा विशेषवादने स्वयं माना है, मगर अदृष्ट तो द्विष्ट है ही नही, अदृष्ट आत्मामें रहता है । वह अन्य समवाय समवायियोंमें कैसे रह सकता है जैसे घटमें रूपका समवाय अदृष्टके कारण हो गया क्या ? ऐसे ही आत्मामें बुद्धिका समवाय है तो क्या समवायका सम्बन्ध समवायीमें अदृष्टके कारण हो गया ? अदृष्ट तो आत्मामें रहने वाला एक गुण है । वह तो आत्मामें ही रहेगा । दुनिया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो इसमें इतरेतराश्रय दोष आता है, किस प्रकार कि जब समवायका नियम सिद्ध हो ले, समवाय सिद्ध हो ले तब तो उस से विशेषताभावके नियमकी सिद्धि होगी। और जब विशेषण भावका नियम सिद्ध होले तब फिर समवायमें नियमकी सिद्धि होगी। समवायियोंमें समवायका विशेषण कहेंगे, यह बात कहना और विशेषण भाव होनेसे इन समवायियोंका यह समवाय है, यह नियम बनना ऐसे ये दो नियम परस्पर आश्रित हो गए।

विशेषणभावसे समवायका समवायी सिद्ध करनेमें विशेषणभावका भिन्नता अभिन्नताके विकल्पमें निराकरण – अब यह बतलावो कि यह जो विशेषणभाव कहा जा रहा है सामान्यतया विशेषणभाव। किसी विशिष्ट नामके विशेषण भावकी अपेक्षासे नहीं कह रहे विशेषणभाव नामक सम्बन्ध हो, वह ६ पदार्थोंसे भिन्न है या अभिन्न द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय ये ६ पदार्थ विशेषणवादमें माने गए। अब नई चीज कह रहे हैं शंकाकार विशेषणभाव नामका कुछ भी तत्व माने इन ६ पदार्थोंसे भिन्न है, अथवा अभिन्न? यदि कहोगे कि विशेषण भाव ६ पदार्थोंसे भिन्न है तो वह भावरूप है या अभावरूप ६ पदार्थोंसे भिन्न जो कुछ विशेषणभाव हैं वह सद्भावरूप है अथवा अभावरूप है? यदि कहोगे कि सद्भावरूप है तब तो ऐसा नियम बनाना कि पदार्थ ६ ही होते हैं इसमें विरोध आ जायगा। लो अब उन ६ पदार्थोंके अलावा विशेषणभाव नामक भी पदार्थ निकल आया। और, यह कह नहीं सकते कि विशेषणभाव अभावरूप है। क्योंकि ऐसा माना ही नहीं गया है तब विशेषणभावकी सिद्धि नहीं होती।

विशेषणभावका छह पदार्थोंमें अनन्तर्भाव—यदि यह कहोगे कि विशेषण भाव इन ६ पदार्थोंमें गर्भित हो जाता है। अलगसे कुछ नहीं है तो बतलावो यह विशेषणभाव द्रव्य तो है नहीं, क्योंकि विशेषणभावमें अन्य किस गुणका समावेश है? जो गुणोंका आधार हो वही तो द्रव्य है। द्रव्यमें गुणोंका आश्रितपना हुआ करता है। विशेषणभाव यदि द्रव्य नामक पदार्थ मान लिया जाय तब तो उसमें गुण बतलावो किस नवीन गुणोंका समावेश है। तो गुणोंके द्वारा आश्रितपना न होनेके कारण ये द्रव्य नहीं है। अथवा मानलो द्रव्य हो जायें विशेषणभाव तो गुणोंके आश्रितपनेका सर्वत्र अभाव हो जायगा। फिर नियम न रहेगा कि गुण द्रव्याश्रित होता है। इस कारण विशेषणभाव गुण नामका भी पदार्थ नहीं है। क्योंकि यदि गुण होता तो बतलावो यह विशेषणभाव किसके आश्रय रह रहा है? गुण तो उसे कहते हैं कि जो द्रव्यके आश्रय रहा करते हों? विशेषणभावको कर्म नामक पदार्थ नहीं कह सकते क्योंकि कर्मके आश्रितपनेके अभावका प्रसंग हो जायगा। विशेषणभावमें सामान्य नामक पदार्थ भी नहीं कह सकते, क्योंकि समवायमें सामान्यकी उपपत्ति नहीं है। समवाय तीन पदार्थोंमें हुआ करता है, द्रव्य, गुण, और कर्म।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्योंकि सम्बन्धान्तरसे सम्बद्ध पदार्थोंमें ही विशेषणभावकी प्रवृत्ति देखी गयी है याने किसी पदार्थको विशेषण कहना किसी पदार्थको विशेष्य कहना यह तब ही बन सकता है जब अपने-अपने कारणसे या सम्बन्धान्तरसे सम्बद्ध होकर वे दोनों ही पदार्थ पहिले निष्पन्न हुए हों तब तो उनमें विशेष्य विशेषण भावकी प्रतिपत्ति बन सकती है। जैसे कहा कि यह दण्डविशिष्ट पुरुष है तो दण्डमें दण्डत्वके समवायसे पहिले दण्ड पहिले निष्पन्न है और वह पुरुष भी अपने कारणसे निष्पन्न है तो अपने-अपने सम्बन्धान्तरसे सम्बद्ध उन दोनों पदार्थोंमें पुरुष विशेष्य है, दण्ड विशेषण है, यह कहा जा सकता है और यदि इस तरह न माने, अपने-अपने सम्बन्धसे सम्बद्ध होकर निष्पन्न रहकर विशेष्य विशेषण भाव बनता है यह न मानें। बिना ही सम्बन्धके बन जाय तो सब कुछ सबके विशेषण और विशेष्य हो जायगा और फिर समवाय आदिकका सम्बन्ध मानना अनर्थक हो जायगा, क्योंकि देखो ! अब सम्बन्धके बिना भी गुण गुणी आदि भावोंके विशेषणकी प्रतीति हो गई। यहाँ प्रसंग यह है कि गुण गुणी पहिलेसे निष्पन्न हों तब तो उनमें विशेषण विशेष्य भाव बना सकते हो और विशेषण विशेष्य भाव जब बने तब उससे समवाय सम्बन्ध माना जायगा। तो जब वे गुणगुणी हो निष्पन्न हैं पहिलेसे और उनमें विशेष्य विशेषण भाव भी बन गया है तो अब समवाय सम्बन्ध करनेकी आवश्यकता क्या रही ? और भी दोष यह है कि समवायीका विशेषण नहीं बन सकता, क्योंकि अत्यन्त भिन्न होनेके कारण समवाय अपनेमें है समवायी अपनेमें है। कैसे कह दिया जाय कि यह इसका विशेषण है ? उसका वह धर्म है नहीं आकाश की तरह। कोई यह कहे कि असत् धर्मपना उसका रहा आये याने दूसरेका वह दूसरा धर्म कोई धर्म भी नहीं है, यह भी रहा आये, समवाय समवायीका धर्म नहीं है यह भी रहा आये और समवायियोंका विशेषणपना भी रहा आये तो क्या आपत्ति है ? सो उस आपत्तिके परिहारके लिए कहते हैं कि भाई ये दो द्रव्य संयुक्त हैं, ऐसे ज्ञानमें संयोगी धर्मपनेको छोड़कर संयोगके और कुछ उस पदार्थका विशेषणरूपपना नहीं देखा गया है। इन पदार्थोंका संयोग विशेषण है, यह नहीं देखा गया किन्तु उस प्रकारकी परिस्थिति इन संयोगी पदार्थोंकी अवस्था है यह देखा गया है। और, समवाय समवायियों का सम्बन्धान्तरसे दूसरे सम्बन्धसे सम्बद्ध हो जाना यह भी बनता, क्योंकि विशेषणवादमें ऐसा माना ही नहीं गया है। तो यों विशेषणभावके बलपर समवाय समवायियों में सम्बद्ध रहे, यह सिद्ध नहीं हो पाता।

पदार्थोंकी परस्पर भिन्नता होनेसे स्वयं निष्पन्न पदार्थोंमें समवायकी अप्रयोजकता—और, भी सुनो ! जो भी विशेषण भाव दिया है जैसे यहाँ समवाय को विशेषण माना है तो वह समवायियोंसे अत्यन्त भिन्न है, क्योंकि समवायी भी पहिलेसे स्वयं निष्पन्न पदार्थ है। द्रव्य गुण आदिक और समवाय भी स्वयं पदार्थ है। तो जब ये दोनों अत्यन्त भिन्न हो गए तो उनमें यह नियम कैसे बनेगा कि समवाय विशेषण है, समवायी विशेष्य है ? यदि कहो कि समवायसे बन जायगा यह सम्बन्ध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समवायकी व समवायके स्वतःसम्बन्धरूपताकी असिद्धि– शंकाकार कहता है कि समवाय सम्बन्धान्तरकी अपेक्षा नहीं रखता, क्योंकि यह स्वतः सम्बन्धरूप है। जो पदार्थ सम्बन्धान्तरकी अपेक्षा रखा करता है वह स्वतः सम्बन्ध नही कहलाता। जैसे घट पट आदिक ये सम्बन्धान्तरकी अपेक्षा रखते हैं, क्योंकि स्वतः सम्बन्धरूप नही हैं। लेकिन समवाय तो स्वतः संबंधरूप है। इस कारण सम्बन्धान्तरकी अपेक्षा नही रखता। समाधानमें कहते हैं कि यह कहना केवल अपने मनकी कल्पनामात्र है, क्योंकि इसमें हेतु असिद्ध है। जब समवायका स्वरूप ही सिद्ध नही है तो उसमें यह सिद्ध करना कि समवायमें स्वतः सम्बन्धपना है, कैसे युक्त हो सकता है ? और फिर इस हेतुका संयोगके साथ अनेकान्त दोष है। देखो संयोग भी सम्बन्ध है। लेकिन वह सम्बन्धान्तरकी अपेक्षा रखता है। जब समवायका सहयोग मिलता है तो संयोग द्रव्यमें जुड़ता है। संयोगादिक स्वतः असम्बन्ध स्वभावरूप होनेपर भी किसी पर सम्बन्धसे जुट जाय यह तर्क भी तो युक्त नही है। और, घट आदिक पदार्थ संबंधी होनेके कारण इनमें परसे भी संबंधपना नही बन सकता। इस कारण यह कहना कि समवाय स्वतः संबंधरूप है यह बात अयुक्त है। अब समवायमें अन्य सम्बंध जोड़ते भी नहीं बनता। बात तो यह है कि जब कोई बात है ही नही, समवाय पदार्थ है ही नही फिर उसके बारेमें कुछ विशेषता बताये कोई तो उसकी पूर्ति नहीं हो सकती है। इस प्रकार समवायमें स्वतः सम्बन्ध होना सिद्ध न हुआ।

संयोग और समवायान्तरसे भी समवायीमें समवायके सम्बन्धकी अनुपपत्ति–– अब यदि कहोगे कि समवायियोंमें समवायका सम्बन्ध परसे होता है तो वह पर क्या चीज है जिससे कि समवायमें समवायका सम्बन्ध होता है ? क्या वह संयोग है अथवा समवावान्तर है या विशेषण भाव है अथवा अदृष्ट है ? इन चारमेंसे कौनसा कारण है जिससे कि समवायोंमें समवायका सम्बन्ध होता है। संयोगसे तो समवायोंमें समवायका सम्बन्ध कह नही सकते, क्योंकि संयोग तो गुणरूप है और जो गुण होगा वह द्रव्यके आश्रय रहा करता है। समवाय तो द्रव्य नही है, समवाय तो स्वतन्त्र पदार्थ माना है फिर समवाय और समवायीमें संयोग किसी भी प्रकार हो नहीं सकता। इससे संयोगसे समवायीमें समवाय सम्बन्ध हो जायगा, यह पक्ष निराकृत हुआ। अब यदि कहते हो कि समवायान्तरसे सम्बन्ध हो जायगा समवायियोंका समवायमें तो वह भी युक्त नही है, क्योंकि समवाय तो एकत्वरूप माना गया है विशेषवादमें। और फिर कदाचित् मान लो कि समवायान्तरसे समवायमें समवायका सम्बन्ध हो जाता है तो इसमें अनवस्था दोष आयगा। तब द्वितीय पक्ष भी निराकृत हुआ।

विशेषणभावसे भी समवायीमें समवायके सम्बन्धकी अनुपपत्ति–– अब यदि कहोगे कि विशेषणभावसे समवायमें समवायका सम्बन्ध हो जायगा तो वह भी अयुक्त है। विशेषभावसे समवायीमें समवायका सम्बन्ध कहना बेतुकी बात है,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पना है। ये भी कुछ प्रत्यक्षसे प्रसिद्ध नहीं हो रहे। क्योंकि समवायका स्वरूप प्रत्यक्षके विषयभूत नही है। तब समवाय और संयोग कोई पदार्थ ही नहीं है। पदार्थके विशेष धर्मको निरखकर कल्पना की जानेकी बात है तो उसकी प्रत्यक्षता आये कहाँसे ?

समवायके स्वत: सम्बन्धरूपत्वकी अनुमान विरुद्धता और, भी सुनो शंकाकारने जो यह कहा है कि समवायमें सम्बन्धपना स्वत: हुआ करता है यह बात अनुमान विरुद्ध है। कैसे अनुमानसे समवायमें स्वत: सम्बन्धत्वका विरोध होता है सो सुनो ! समवाय किसी अन्य सम्बन्धीके साथ सम्बध्यमान होता हुआ स्वत: सम्बद्ध नही होता क्योंकि सम्बध्यमान होनेसे रूप आदिककी तरह। जैसे रूप घटके साथ सम्बद्ध होता है तो सम्बध्यमान हैं ना रूप आदिक, तो उनका सम्बन्ध स्वत: नही होता, किन्तु रूप आदिकमें होता है। विशेषवादकी मान्यताको लेकर यह अनुमान दिया गया है ताकि उनका गलत मंतव्य खण्डित हो जाय। तो इस अनुमानसे विरोध होनेके कारण भी समवायमें स्वत: सम्बन्धत्व है यह बात सिद्ध नही होती जो जो सम्बध्यमान होते है वे वे स्वत: सम्बद्ध नहीं हुआ करते। जैसे रूप आदिक सम्बध्यमान हैं घटमें तो रूप आदिक स्वत: ही घटमें सम्बद्ध नही होते, किन्तु समवाय सम्बन्धके कारण सम्बद्ध होते हैं। तो इसी प्रकार जब समवाय भी सम्बध्यमान है तो वह भी स्वत: सम्बद्ध न हो सकेगा। किसी अन्यसे सम्बद्ध मानना होगा। इस अनुमानसे भी समवायके स्वत: सम्बन्धत्वका निराकरण हो जायगा। अब यदि शंकाकार यह कहे कि जैसे अग्निमें उष्णता है और परके लिये भी उष्णता करता है तो अग्निकी उष्णताका सम्बन्ध स्व और परके लिए है। ऐसे ही समवाय और समवायी दोनोंमें सम्बन्धका कारण है। इसी प्रकार जैसे दीपकका जो प्रकाश है वह भी स्व और पर दोनोंके प्रकाशका कारण है ऐसे ही समवाय अपने व समवायी दोनोंके सम्बन्धका कारण है गंगाका जल जैसे पवित्र माना जाता है तो वह भी स्वयं पवित्र है और दूसरोंकी पवित्रताका कारण है इसी प्रकार समवाय भी चूंकि सम्बन्धरूप है इसलिये स्वके भी संबन्धका कारण है और परके भी सम्बन्धका कारण है। याने समवायमें स्वत: सम्बन्धपना है और वह द्रव्य गुण कर्म आदिकमें परस्पर में समवाय सम्बध कर देता है। तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि तब तो इस ही दृष्टान्तके आधारपर यह क्यों नहीं नहीं मान लिया जाता कि ज्ञान स्व और परके प्रकाशका कारण है। अर्थात् ज्ञान स्वपर व्यवसायी है। जैसे कि अग्नि स्व पर उष्णताका कारण है, दीपक स्व पर प्रकाशका कारण है। इस ही प्रकार ज्ञान स्व परके ज्ञानका कारण है। ऐसा मान लेना चाहिए। और, यदि इस प्रकार मान लेते हैं विशेषवादी तो उनका यह सिद्धान्त कि ज्ञान ज्ञानान्तरके द्वारा वेद्य है प्रमेय होनेसे यह खण्डित हो जाता है। देखो ! अब यह ज्ञान स्व पर प्रकाश हेतु बन गया। तब ज्ञानने अपने आपको जान लिया और दूसरेको जना दिया। तो अब ज्ञानान्तरके द्वारा वेद्य हो, इसकी आवश्यकता कहां रही ? इससे सिद्ध है कि समवाय स्वत: संबंध रूप नहीं है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

सत् और समवायमें सत्त्वकी उपपत्तिके कारणकी पृच्छा—अब और भी सुनो ! सत्ताके समवायसे पदार्थोंका सत्व माना है तो यह बतलावो कि सत्ता और समवायका सत्व कैसे हो गया ? अब यहाँ तीन बातें आयी ना—पदार्थ, सत्ता और समवाय। जैसे आत्मा नामक द्रव्यका अस्तित्व जानना है तो आत्मा द्रव्य हैं और आत्मामें सत्ताका समवाय हुआ तब आत्मामें सत्व पाया। अब यहाँ तीन पदार्थ हो गए—आत्मा सत्ता और समवाय। तो यहाँ यह बतलावो कि सत्ता और समवायमें सत्व कहाँसे आ गया ? सत्ता और समवायमें सम्बन्ध यदि नहीं है और फिर भी सत्व माना जाय याने सत्ता और समवायमें किसी सत्ता आदिकका सम्बन्ध नहीं बताया जाता और फिर भी सत्व कहलायेंगे तो इसमें अतिप्रसंग दोष होगा। फिर तो क्या है ? खरविषाण आदिक भी सत्व कहलाने लगे। न हो सत्ता और समवायका सम्बन्ध और फिर भी यह सत्व कहलाये, सत्तामें और समवायमें स्वयं कुछ नहीं है और फिर भी सत्व कहलाता है तो इसका अर्थ यह निकला कि सत्ता और समवायके सम्बन्ध बिना भी कोई सत् कहला सकता है। तो खरविषाणमें सत्ता और समवायका सम्बन्ध नहीं है तो न होने दो, सम्बन्ध न होकर भी यह सत् कहला जायगा। तो यहां पूछा जा रहा है कि सत् और समवायमें सत्व कैसे आया ?

सत् और समवायमें सत्त्वकी अनुपपत्ति—यदि कहो कि सत्ता समवायान्तरसे याने अन्य सत्ताका समवाय हुआ इससे सत्तामें सत्व आया और समवायमें अन्य सत्वका समवाय हुआ इसलिए समवायमें सत्व आया। ऐसा कहनेपर अनवस्था दोष हो जायगा। फिर तो अनेक सत्ता और अनेक समवाय मानते रहने पड़ेंगे। यदि कहो कि सत्ता और समवायमें सत्व स्वतः ही आ गया तब तो समस्त पदार्थोंका ही सत्व सत्ता ही क्यों न मान ली जाय ? सत्ता और समवायसे फिर क्या प्रयोजन रहा ? इस प्रकार सत् कोई अलग पदार्थ है और सत् समवायका सम्बन्ध होनेसे फिर कोई पदार्थ सत् कहलाये यह व्यवस्था वस्तुस्वरूपके विरुद्ध है। शंकाकारने जो यह कहा था कि समवायमें सत्व स्वतः ही बन जायगा। जैसे कि अग्निमें उष्णता स्वतः ही बनी हुई है। यह कथन भी कोरा प्रलाप है। और भाई प्रत्यक्ष सिद्ध पदार्थ स्वभावमें तो स्वभावोंके द्वारा उत्तर दिया जा सकता है। अग्नि और उष्णता इन दोनोंका प्रत्यक्ष हो रहा है। वहां तो हम यह कह सकते हैं कि अग्निमें उष्णता स्वतः पायी जा रही है, उसमें सम्बन्ध जोडनेका विकल्प नहीं करना पड़ता ? लेकिन समवाय और समवायी ये कुछ प्रत्यक्षसिद्ध तो नहीं हैं। तंतु पट ये प्रत्यक्ष सिद्ध हैं, किन्तु इन्हें समवायी कहना यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं है। वह जैसा है सो है। समवायी कहां दिखता है और, इसी तरह तंतु और पटका समवाय भी नहीं प्रत्यक्ष सिद्ध है। समवायका कहां प्रत्यक्ष हो रहा है ? तो जो प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं है उनमें प्रत्यक्ष सिद्ध अग्नि उष्णताका दृष्टान्त दोगे तो वह कैसे सिद्ध बनेगा। सो वहाँ यह भी नहीं कहा जा सकता कि समवायमें तो स्वतः सम्बन्धपना है और संयोग आदिकमें समवायके कारण सम्बन्ध-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का समवाय है तब वह सत् है, लेकिन सत्ता समवाय और अन्त्यविशेष इनमें तो सत्ता का लक्षण सम्भव नहीं है, क्योंकि इनमें सत्ताका समवाय नहीं है। विशेषवादमें ऐसा माना है कि तीन पदार्थोंमें सत् सत् ऐसा व्यपदेश जो कराये उसे सत्ता कहते हैं, तो इसमें भाव यह निकला कि द्रव्य, गुण, कर्म इन तीन पदार्थोंमें तो सत्ताका समवाय होनेसे इनका सत्त्व कहलाता है और शेषमें जो तीन पदार्थ रह गए सामान्य, जिसे पर-सामान्यकी दृष्टिसे सत् कह लीजिये, सत्ता हो कह लीजिए, इसके अतिरिक्त अनेक अपर सामान्य, समवाय और अन्त्य विशेष या सामान्य, विशेष, समवाय इन तीनमें सत्ताका समवाय नहीं होता, किन्तु ये तीन पदार्थ तो स्वयं ही सत् हैं। अब देख लीजिए। सत्त्वका लक्षण तो यह किया गया कि सत्ताके समवायको सत्त्व कहते हैं, पर सामान्य, विशेष, समवाय ये तीन पदार्थ सत्ताके समवायके बिना भी सत् मान लिए गए हैं तो यह लक्षण छहों पदार्थोंमें घटित नहीं हुआ इस कारण सत्त्वका लक्षण अव्यापी है।

विशेषवादोक्त सत्त्व लक्षणमें अतिव्याप्तिदोष—अब इसमें दूसर भी दोष देखिये ! सत्वका लक्षण अतिव्यापी है। लक्षणको छोड़कर अलक्षणमें भी पहुँचे इसको अतिव्यापी कहते हैं। तो सत्वका लक्षण सत्में जाय और सब सत्में जायें तब तो ठीक था ऐसा न हो तो अव्याप्तिदोष आ जाता है। और जो सत् नहीं है असत् जैसे की आकाशके फूल, खरविषाण इनमें भी सत्ताका लक्षण है इसलिए अतिव्याप्ति दोष है याने सत्ता है सब जगह व समवाय है सर्वत्र सो सत्ताका समवाय आकाशका फूल, खरविषाण, इनमें भी पहुंच जायगा। शंकाकार कहता है कि खरविषाण आदिक का तो सत्व ही नहीं है इस कारण सत्ताका समवाय नहीं होता। तो उत्तरमें कहना है कि इसमें तो अन्योन्याश्रय दोष आता है। जब खरविषाण आदिकका असत्व सिद्ध हो ले तब यह सिद्ध होगा कि इसमें सत्ताके समवायका विरह है। अब जब इसमें सत्ताके समवायका विरह सिद्ध हो ले तब यह सिद्ध होगा कि इसका असत्व है, खरविषाण आदिकका सत्व नहीं है।

सत् समवाय और सत्त्व भिन्न भिन्न पदार्थ होनेसे परस्पर एक दूसरे का स्वरूप बननेकी असंगतता—अब तीसरी बात सुनो ! सत्ताके समवायको सत्वका लक्षण कहा है। सो यह कहनेमें भी असंगत लग रहा है। सत्ता एक पदार्थ है, समवाय एक पदार्थ है, सत्व एक धर्म है। ये सारी बातें भिन्न-भिन्न चीजें हैं। भिन्न पदार्थ भिन्न पदार्थका स्वरूप नहीं बना करता। अगर कोई भिन्न पदार्थ किसी भिन्न पदार्थका स्वरूप बन जाय तो घटका स्वरूप पट बन जाय, पटका स्वरूप कट बन जाय, यों अतिप्रसंग आता है और फिर भिन्न स्वरूप किसी भिन्न पदार्थका बन जाय तब फिर दूसरा पदार्थ या कोई पदार्थ रहेंगे ही नहीं, पदार्थोंकी हानि हो जायगी, अथवा एकका स्वरूप दूसरेका बन जाय तो उनमें फिर भिन्नता न रहेगी। इस कारण भी सत्ताके समवायको सत्व कहते हैं, यह बात युक्त नहीं बैठती।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सम्बंध भी नहीं बनता। यदि अनुपकारी पदार्थोंका परस्पर सम्बन्ध बनने लगे तो इस में अतिप्रसंग दोष आयगा फिर तो जिस चाहे पदार्थका जो बिना जोड़ मेलके भी हों, उनका भी सम्बंध मान लिया जायगा। इससे यह कहना कि स्वकारणमें सत्ताका समवाय होना ही कार्यस्वरूपका उद्‌भव है, यह कहना नहीं बनता।

तत्त्वज्ञानका रूप और प्रयोजन—प्रसंगमें यह समझना चाहिए कि विश्वमें जितने भी पदार्थ हैं वे सब परिपूर्ण स्वतः सत् हैं, निरपेक्ष अखण्ड सत् हैं। उन सत् सत् पदार्थोंके सम्बन्धमें यदि कुछ कह सकते हो तो व्यक्त दशाकी बात कह सकते हो। वर्तमानमें किस द्रव्यका क्या परिणमन है, यह बात तो तकी जा सकती है। सो वह सत् पदार्थका व्यक्त रूप है। अखण्ड सत्में पर्याय अलग पड़ी हो। पर्यायके आधारभूत शक्ति (गुण) अलग रहती हो और फिर उनमें भी सामान्य विशेष जुदे जुदे रहते हों और फिर इन जुदे जुदे रहने वाले तत्त्वोंका मेल करानेके लिए कोई समवाय पदार्थ हो दुनियामें, यह सब मनगढ़ंत मनोरथ है। पदार्थ तो सभी अपने आपमें परिपूर्ण स्वतः सिद्ध स्वयं सत् हैं। फिर समवायकी कल्पना करना व्यर्थ है। पदार्थ है और परिणमते हैं और परिणमते हैं। दो बातें समझमें आती हैं। इनसे अधिक समझनेके लिए फिर विशेष भेद व्यवहारका आश्रय लेना होता है। तत्त्व जुदे-जुदे नहीं हैं। और परिणमते हैं। इतना ही मात्र वस्तुगत स्वरूप है। अब उस है को समझनेके लिये और भेद किये जाते हैं। जो भेद परिणमनके भेदका सहयोग लेकर हों उनसे समझकी बातें आती हैं अनेक, लेकिन वे सब उस द्रव्यकी विशेषतायें हैं। कहीं वे गुण, कर्म सामान्य, विशेष जुदे-जुदे पदार्थ नहीं हो जाते। इस कारण व्यर्थ तत्त्वके भेदके भ्रमणमें न उलझकर सही प्रदेशवान पदार्थोंको मानकर उन्हें स्वतंत्र निरखनेका और उनमें परस्परकी असम्बद्धता देखकर मोहका परित्याग करना, बस इसी लिए तो तत्त्वज्ञान है। तत्त्वको कहनेके लिए ही, तत्त्वमें काट छाट भेद बढ़ानेके लिए ही, तत्त्वज्ञान नहीं होता। ज्ञान वही कहलाता है जो अहितका परिहार कराये और हितमें लगाये। तो प्रत्येक तत्त्वज्ञानकी हम इस ढंगसे प्राप्ति करें कि जिसके प्रसादसे हम अहितसे दूर हों और हितमें लगें। इसके लिए यही तो बात चाहिए कि प्रथम तो हम देहमें और आत्मामें भेदविज्ञान करें और फिर आत्मामें ही विभाव और स्वभावमें भेद विज्ञान करें। उन विभावोंको समझनेके लिए निमित्त आश्रय आदिक अनेक बातें समझनी पड़ती हैं फिर भी विभाव आदिक आत्माके परिणमन रूप हैं और उन कालमें अभेद हैं लेकिन वे भी भिन्न माने जाते हैं स्वभावके मुकाबले अर्थात् वे अनादि अनन्त भाव नहीं हैं। इन सब परभावोंसे दूर होकर निज शाश्वत स्वभावमें रत होनेके लिए तत्त्वज्ञान होता है।

विशेषवादोक्त सत्त्वलक्षणमें अव्याप्ति दोष—शंकाकारने सत्त्वका लक्षण किया है सत्ता समवायः। सत्ताके समवायका होना सो सत्त्व है। यह लक्षण अव्यापी दोषसे दूषित है याने जितने भी पदार्थ हैं सबका यह लक्षण जानना चाहिए कि सत्ता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आया ? क्या अन्य समवायसे आया अथवा स्वतः ही आया ? यदि कहोगे कि समवाय से पहिले पदार्थोंमें जो सत्त्व आया है वह अन्य समवायसे आया है तो सुनो ! यह बात तो तुम्हारे ही सिद्धान्तसे असत्य है। विशेषवादमें तो समवायको एक ही माना है। समवायान्तर कहाँसे आ गया ? समवाय अनेक तो नहीं हैं और कदाचित् मान लिया जाय कि समवाय अनेक हैं और इसी कारण सत्ता समवायसे पहिले भी सत् पदार्थ जो हैं उनमें सत्त्व अन्य समवायसे आया तो इससे पहिले जो सत् हैं, जिनमें समवायान्तर लगाकर सत्त्व बनाया है उन पूर्व अर्थोंमें सत्त्व कैसे आया ? वहाँ भी कहना पड़ेगा कि समवायान्तरसे आया। तब इस तरह अनवस्था दोष आयगा। अतः यह नही कह सकते कि सत् पदार्थोंमें सत्ताका समवाय होता है और समवाय होनेसे पहिले जो भी सत् हैं उनमें सत्त्व समवायान्तरसे ही है। अब यदि कहोगे कि सत् पदार्थोंमें सत्त्व स्वयं ही है। जिन सतोंमें सत्ताका समवाय किया जा रहा है समवायसे पहिले वे सत् स्वतः ही सत् हैं ऐसा मान लेनेपर फिर समवायोंकी कल्पना करना अनर्थक है। लो ये पदार्थ तो पहिलेसे ही स्वयं सत् है।

सत्तासमवायसे पहिले पदार्थोंमें सत्त्व व असत्त्व दोनोंके निषेधमें विरोध— शंकाकार कहता है कि समवायसे पहिले उन पदार्थोंमें न तो सत्त्व है, न असत्त्व है क्योंकि सत्ताके समवायसे ही सत्त्व माना गया है। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात असंगत है। दो ही तो धर्म हैं मुकाबलेमें विचार करनेके लिए—सत्त्व और असत्त्व और, ये दोनों धर्म हैं परस्पर व्यवच्छेदरूप। अर्थात् जहाँ सत्त्व है वहाँ असत्त्व नही, जहाँ असत्त्व है वहाँ सत्त्व नही। इस तरह एकका निषेध करनेपर दूसरेका विधान हो जाना अनिवार्य है, क्योंकि दोनों धर्म परस्पर व्यवच्छेदरूप हैं। तो जब इनमें यह बात है कि एकका निषेध करेंगे तो दूसरेकी विधि बन जायगी, ऐसी स्थितिमें दोनोंका निषेध करनेका विरोध है, तब यह कहना कि समवायसे पहिले उन पदार्थोंमें न सत्त्व है न असत्त्व है, यह बात घटित नही होती। एकका निषेध होगा तो दूसरेकी विधि माननी ही पड़ेगी।

अनुपकारी सत्ता और समवायमें परस्पर सम्बन्धकी असिद्धि—और भी समझिये कि इन सत् पदार्थोंमें, इन समवायी पदार्थोंमें सत्ताका समवाय किस लिए किया जाता है ? सम्बन्ध जितने भी होते हैं परस्परमें वे सम्बन्ध उपकारियोंमें होते हैं अनुपकारियोंमें नही होते हैं। वे सब सम्बन्ध तब ही तो बनाते हैं जब परस्परमें एक दूसरेका उपकार समझते हैं। चाहे वह भूलरूप ही क्यों न हो लेकिन उपकार समझे बिना उपकार हुए बिना परस्परमें सम्बन्ध नहीं बनता। तो ये सत्ता और समवाय तो अनुपकारी हैं। कौन किसका क्या उपकार करता है ? सत् तो पहिलेसे ही सत् है समवायने सत्का क्या उपकार किया ? समवाय जो हो सो हो, वह परिकल्पित चीज है। उसके सत्ताका क्या उपकार बनता है ? तो अनुपकारी सत्ता और समवायका परस्पर

http://sahjanandvarnishastra.org/

कथनका अब समाधान दिया जाता है। शंकाकारने मूल बातको टालनेके लिए, अनिष्पन्न पदार्थोंमें समवाय होता है या निष्पन्न पदार्थोंमें समवाय होता है इन विकल्पोंका उत्तर टालनेके लिये जो यह कहा है कि अब स्व कारणमें सत्ताके सम्बन्धका ही नाम आत्मलाभ है, निष्पन्नरूपपना है और वही समवाय कहलाता है आदिक जो बात कही है वह संगत नही होती, क्योंकि यदि स्वकारणमें सत्ताके समवायका ही नाम आत्म लाभ किया जाय अर्थात् कार्यरूप वस्तुके स्वरूपका उद्भव माना जाय तब फिर कार्य सदा नित्य रहेंगे। उसका कारण यह है कि सत्ता भी सदैव है और समवाय भी सदैव है। इन दोनों नित्योंके सम्बन्धसे कार्यका उद्भव हुआ है तो ये दोनों नित्य सदैव सम्बद्ध रह जायेंगे, फिर कार्यका कभी भी विनाश नही हो सकता, किन्तु ऐसा तो है नही, और न विशेषवादने स्वयं माना है। वे भी मानते हैं कि कार्यरूप द्रव्य विनाशीक होता है, किन्तु स्वकारण सत्ता सम्बन्धको समवाय व निष्पन्नरूप माननेपर कार्य अविनाशीक हो जायगा।

असत् पदार्थोंमें सत्तासमवायकी असिद्धि और विडम्बना—और, भी सुनो ! यह जो सत्ताका समवाय बता रहे हो, स्वकारणमें सही, जहाँ भी सत्ताका सम्बन्ध बता रहे हो वह सत्ता समवाय क्या सत् पदार्थोंमें होता या असत् पदार्थोंमें होता। असत् पदार्थोंमें सत्तासमवायकी बात तो कह ही नही सकते। यदि असत्में सत्ताका समवाय होने लगे तो आकाशकुसुममें, खरविषाणमें भी सत्ताका समवाय हो जायगा। और फिर व कार्य बन जायगा। इस कारण असत् पदार्थोंमें सत्ताका समवाय होता है, यह तो नही कह सकते। शंकाकार कहता है कि आकाशकुसुम खरविषाण आदिक तो अत्यन्त असत् हैं, इस कारण उन अत्यन्त असत् पदार्थोंमें सत्ताके समवायका प्रसंग नही आ सकता। इस कथनपर शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि फिर गुण गुणी आदिकमें जो अत्यन्त असत्त्वका अभाव माना है अर्थात् ये गुण गुणी द्रव्य गुण आदिक ये अत्यन्त असत् नही हैं यों इनमें अत्यन्त असत्त्वका अभाव कैसे आ गया, गगन कुसुममें तो अत्यन्त असत्त्व है और इन द्रव्य गुणोंमें अत्यन्त असत्त्व नही है सो यह कैसे बात आयी ? यदि कहो कि गुण गुणी द्रव्य गुण कर्ममें अत्यन्त असत्त्वका अभाव इस कारण है कि उनमें समवाय सम्बन्ध लगता है। तो समाधानमें कहते हैं कि ऐसा कहनेसे तो इतरेतराश्रयका दोष आता है। जब समवाय सिद्ध हो ले तब तो गुण गुणी आदिकमें अत्यन्त असत्त्वका अभाव सिद्ध होगा। और, जब गुण गुणी आदिकमें अत्यन्त असत्त्वका अभाव सिद्ध हो ले तब समवायकी बात बनेगी। इस कारण अत्यन्त असत् पदार्थोंमें सत्ताका समवाय तो मानना अयुक्त है।

सत् पदार्थमें सत्तासमवायकी अनर्थकता व असिद्धि—यदि कहो कि सत् पदार्थोंमें सत्ताका समवाय होता है तो यह बतलावो कि समवाय होनेसे पहिले वह पदार्थ सत् है ऐसा कबूल कर रहे हो तो समवायसे पहिले उन पदार्थोंका सत्त्व कैसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बात अयुक्त है क्योंकि समवायका सम्बन्धान्तरसे सम्बन्ध नही माना जा सकता । जिससे कि अनवस्था दोष आये, क्योंकि सम्बन्धमें सम्बन्धके समान ही लक्षण वाला अन्य सम्बन्धसे सम्बन्ध बताया जाय ऐसा तो कहीं नही देखा गया है जैसे संयोगी पदार्थके साथ संयोगका समवाय हुआ है हो गया । अब उसके लिए अन्य सम्बन्ध ढूंढा जाता हो सो बात तो नहीं है । तो समवाय भी एक सम्बन्ध है । उस समवाय सम्बन्धका सम्बन्ध बतानेके लिए अन्य सम्बन्धोंकी कल्पना नहीं की जा सकती ।

अग्निमें उष्णतावत् समवायमें स्वतः सम्बन्धत्व माननेका शंकाकार का कथन—यहाँ कोई यदि यह पूछे कि फिर इस समवायका सम्बन्ध कैसे हो गया समवायियोंके साथ तो जैसे अग्निमें उष्णताका सम्बन्ध कैसे हो गया, इसको कोई भी बताये ! वहाँ तो यही मानोगे ना कि अग्निमें उष्णताका सम्बन्ध स्वतः ही है । तो जैसे अग्निमें उष्णताका सम्बन्ध स्वतः ही है इसी प्रकार समवायका समवायियोंमें सम्बन्ध स्वतः ही है, क्योंकि सम्बन्धरूप होनेसे । संयोग आदिकका सम्बन्ध स्वतः नहीं मान सकते । संयोगका द्रव्योंके साथ सम्बन्ध करानेमें तो समवायकी आवश्यकता पड़ती है । क्योंकि सबकी जुदी जुदी प्रकृतियाँ होती हैं संयोगकी प्रकृति संयोग जैसी है, समवायकी प्रकृति समवाय जैसी है । जो एकका स्वभाव है वह अन्यका भी हो जाय ऐसा तो नियम नहीं है ना ? यदि यों नियम बन बैठे कि जो एकका स्वभाव है उष्णता और हम कहेंगे कि अग्निका स्वभाव जलका बन जाय, क्योंकि अब तो तुमने यह प्रसंग छेड़ दिया कि एकका स्वभाव अन्यका भी स्वभाव बन सकता है । तो अग्निमें उष्णताके देखे जानेसे जल आदिकमें भी उष्णताका स्वभाव मान लिया जाना चाहिए । इस तरह समवायके सम्बन्धमें बहुत सी चर्चायें जोड़ना कि वह अनिष्पन्नमें होता है कि निष्पन्नमें ? समवायका सम्बन्ध समवायियोंमें किस तरह होता है, ये सब विकल्प केवल प्रलापभर है, सम्बन्धरूप है । सम्बन्धका सम्बन्ध होनेमें अन्य सम्बन्धकी अपेक्षा नही होती । इस कारण यह बात प्रमाणसिद्ध हो गयी कि समवाय नामका पदार्थ है और उस समवायका समवायी दो पदार्थोंमें सम्बन्ध होता है और उस समवायका उन दो समवायोंमें सम्बन्ध स्वतः ही होता है । कोई समवायान्तर नहीं माना गया या अन्य समवाय नहीं माने गए । समवाय एक ही है । सो समवायका समवायी पदार्थोंके साथ सम्बन्ध स्वतः ही होता है और स्व कारण सत्ता सम्बन्ध ही समवाय कहलाता है । और स्व कारण सत्ता सम्बन्धको ही निष्पत्ति कहते हैं । यह सब एक साथ चल रहा है, उसमें पूर्वापरताका प्रश्न नही उठता है । यों अन्तिम पदार्थ जो समवाय नामका विशेषवादमें माना है वह बिल्कुल प्रसिद्ध होता है । इस सम्बन्धमें विकल्प उठाकर समवाय पदार्थोंके अस्तित्वका ही निराकरण कर देना युक्त नहीं है ।

शंकाकारके स्वकारणसत्ता समवायकी असंगतता—शंकाकारके उक्त

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वरूप संश्लेषमें न कुछ आधार है, न कुछ आधेय है। वह संश्लेष अनिष्पन्नमें हुआ कि निष्पन्नमें हुआ? अनेक विकल्पोंके कारण किसी भी विकल्पमें घटित नही हो पा रहा। तो जब स्वरूप संश्लेष नामका समवाय नही बना, है ही नही, क्यों नही है कि स्वरूप संश्लेष अगर हो गया तो समझिये कि उनमें एकत्व आ गया। उनके सम्बन्धकी कोई बात तो न रही। सम्बन्ध तो तब माना जाता जब कि स्वरूप तो दो रहते और फिर उनका सम्पर्क रहता। चाहे घन सम्पर्क रहता चाहे शिथिल सम्पर्क रहता। तो स्वरूप संश्लेष नामका तो समवाय कहला ही नही सकता है। वह तो एकत्व कहलायेगा। सम्बन्ध न कहलायेगा।

पारतन्त्र्यरूप समवायकी असिद्धि—अब यदि परतंत्रताको समवाय मानते हो, जैसे आत्मामें बुद्धिका समवाय हो गया तो आत्माका जैसा स्वयंका सहज स्वरूप है वह नही प्रकट हो पा रहा। बुद्धिका समवाय जुट गया और बुद्धि गुण भी अपने आप स्वतंत्र-स्वतंत्र रहकर जिस स्वरूपको रख सकता है, उसे नही रख पा रहा, तो यों परतंत्रता है, इस ही का नाम अगर समवाय कहते हो तो यह भी घटित नहीं होता, क्योंकि वह पारतन्त्र्य अनिष्पन्नोंमें कहोगे या निष्पन्नोंमें? अनिष्पन्न पदार्थोंमें तो आधारका ही सत्त्व सिद्ध नहीं होता, जब दोनों पदार्थ अभी अनिष्पन्न हैं। समवाय जुटे तब निष्पन्न होंगे, तो उनमें परतंत्रता कैसे आयी जिससे कि समवाय सम्बन्ध मान लिया जाय। तो न स्वरूप संश्लेष नामका सम्बन्ध समवाय बन पाता और न पारतंत्र्यका नाम समवाय बन पाता। और, यदि कहो कि वह स्वतंत्रतासे निष्पन्न है जिसमें कि परतंत्रतारूप समवाय मानेंगे, तो भाई तुम यह कैसी बेतुकी बात कहते हो? जो स्वतंत्रतासे निष्पन्न हो गए, अपने स्वरूपमें परिपूर्ण निष्पन्न हैं, उनमें परतंत्रताकी बात क्या कह सकते हो? इससे समवाय पदार्थोंकी कुछ सिद्धि नहीं हो सकती?

स्वकारणसत्ता सम्बन्धको ही समवाय व निष्पन्नत्व माननेका शंकाकारका आशय—शंकाकार कहता है कि हम ऐसा नहीं मानते कि निष्पन्नमें समवाय होता है या अनिष्पन्नमें समवाय होता है, समवाय तो स्वकारण सत्ता सम्बन्धरूप है अर्थात् अपने कारणोंमें, अपने कारणोंकी सत्ताका सम्बन्ध कराना यही समवाय है और स्व कारण सत्ता सम्बन्धकी ही निष्पत्ति रूपता है ऐसा नही है कि निष्पत्ति कोई अन्य बात हो और समवाय कोई अन्य बात हो। स्वकारण सत्ता सम्बन्ध ही समवाय कहलाता। अतएव उनमें पूर्वापरता कह नहीं सकते कि पहिले पदार्थ उत्पन्न होते हैं या पदार्थका समवाय होता है। वे दोनों ही एक हैं। काम एक हुआ स्वकारण सत्ता सम्बन्ध। अब उसमें पूर्वापर क्या प्रश्न करना कि निष्पत्ति पहिले है कि समवाय पहिले है? यह प्रश्न भी नहीं उठता। और, जब स्वकारण सत्ता सम्बन्धको ही निष्पत्ति मान ली गई है तो वही हुआ समवाय। तब यह विकल्प उठाना कि स्वरूप संश्लेषका नाम समवाय है क्या या पारतंत्रताका नाम समवाय है? यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कारण बना है ? यदि कहो कि समवायियोंमें समवायका सम्बन्ध स्वत: बना है तो जब सम्बन्ध स्वत: बनने लगा तो संयोग आदिकका भी सम्बन्ध स्वत: ही क्यों न मान लिया जाय ? विशेषवादमें संयोगका सम्बन्ध पदार्थोंमें समवाय सम्बन्धसे माना है । तो जब समवाय सम्बन्ध समवायियोंमें स्वत: ही बन जाता है तो यों संयोग सम्बन्ध उन दो द्रव्योंमें स्वत: ही क्यों नही बन जाता ? बन जाना चाहिए। सो विशेषवादमें मानना इष्ट नही है । यदि कहो कि समवायी पदार्थोंमें समवायका सम्बन्ध परसे होता है तो इसमें अनवस्था दोष आता है । समवायी दो पदार्थोंमें समवायका सम्बन्ध हुआ समवायसे, अब उस दूसरे समवायका उनमें सम्बन्ध हुआ तीसरे समवायसे, तीसरे समवायका उन सबमें सम्बन्ध करनेके चतुर्थ समवायकी कल्पना की जाय फिर उस समवायका जो निकट समवाय और समवायीमें सम्बन्ध बनाया जायगा वह बनेगा अन्य समवायसे । तो इस प्रकार समवायियोंकी कल्पना बनाते जायेंगे । अनवस्था दोष हो जायगा । कहीं निर्णय ही न हो सकेगा ।

गुणोंमें आधेयत्व न होनेसे समवायकी असिद्धि—अब और अन्य बात यह देखिये ! कि द्रव्यमें गुण आधेय है ऐसा ही तो कहना है और, द्रव्यमें गुणका इसी बुनियादपर समवाय मानते हैं । गुणमें द्रव्यका समवाय तो नही कहते । आधारका आधेयका समवाय बता रहे हैं तो इसका मतलब यह हुआ कि गुण आदिक जिनका कि समवाय सम्बन्ध कराया जायगा वे सब आधेय होना चाहिए, लेकिन गुण आदिकमें आधेयपना सम्भव नही है, क्योंकि वह निष्क्रिय है, गुणोंमें क्रिया तो है नही । यदि क्रिया होती और फिर क्रियाका रुकावट करने वाला कोई बनता तभी तो आधार और आधेयपनेकी बात बनती । जैसे—पानीकी क्रिया हो रही है और घटमें पानीको डाला तो पानीकी जो क्रिया है, वेग है उसका प्रतिबन्ध कर दिया ना घटकी तलीने, तभी घट आधार कहलाता और जल आधेय कहलाता । लेकिन गुणोंमें जब क्रिया ही नही होती तो वे आधेय नही कहला सकते । क्रिया हो और वे द्रव्यके पास पहुँचे और द्रव्य उन्हें रुकावट करदे, उसके आगे उन्हें न जाने दे तब तो द्रव्यमें गुणमें आधार आधेयपनेकी बात बन सकती है और जब गुणोंमें आधेयताकी बात न रही तो फिरके उन द्रव्यमें समवाय करनेकी बात क्या रही ?

स्वरूपसंश्लेषमें समवायत्वकी असिद्धि—अब सर्व ओरसे विचार करनेपर यह प्रमाणित होता है कि स्वरूपका याने स्वभावका परस्परमें सम्बन्ध नही होता । याने समवायका सीधा अर्थ आप क्या लोगे ? या तो यह कहोगे कि स्वरूपका संश्लेष हो गया है दो पदार्थोंके स्वभाव थे उन स्वभावोंका आपसमें मिलन हो गया है इस ही का नाम समवाय है अथवा यह कहोगे कि दो पदार्थ थे स्वतंत्र-स्वतंत्र, अब वे दोनों परतंत्र हो गए । अब अपनी स्वतंत्रता नही रख रहे, तो ऐसे दो प्रकारके सम्बन्ध की कल्पना करनेपर स्वरूप संश्लेष समवाय तो अब यहाँ घट नही पा रहा, क्योंकि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का सम्बन्ध है वह विशेषण है तो दण्डी इस ज्ञानमें दण्ड शब्दके उल्लेखके द्वारा क्या विशेषण जाना गया ? दण्ड । तो इसी प्रकार यह बतलावो कि समवाय है इस प्रकार के ज्ञानमें जो आप अदृष्टका अनुराग मान रहे हो तो उसमें क्या जाना गया । जबर्दस्ती कुछ कहना यह आपके घरकी बात है । मगर कोई भी पुरुष अदृष्ट शब्दकी रचना के द्वारा समवाय है इस प्रकारके ज्ञानमें अदृष्टका सम्बन्ध नहीं समझ रहा है और अदृष्टका सम्बन्ध मानना नहीं बन रहा । अन्यथा किसी भी फिर अदृष्टको ही विशेषण मान लो । समवाय है इस प्रकारके ज्ञानके लिए ही अदृष्टको विशेषण क्यों मान रहे ? दण्डी है, पट है आदिक समस्त ज्ञानोंमें भी अदृष्टको ही विशेषण मानिये ! फिर तनु पट आदिक अनेक द्रव्योंमें विशेषण भावकी कल्पना करनेसे क्या प्रयोजन रहा ? इस प्रकार आपके विशेषण भावकी उपपत्ति नही बनती । तो यह अनुमान आपका दूषित हो गया कि समवायी द्रव्य है इस प्रकारका ज्ञान विशेषणपूर्वक है, विशेष्य प्रत्ययरूप होनेसे । वह ज्ञान समवायपूर्वक है ही नही, समवाय कोई पदार्थ नही है।

अनिष्पन्न या निष्पन्न समवायियोंमें समवाय सम्बन्धकी असिद्धि—विशेषवादमें जो समवाय सम्बन्ध माना जा रहा है उसके बारेमें विशेषवादी बतायें कि यह सम्बन्ध, समवायनामक सम्बन्ध अनिष्पन्न सम्बन्धियोंमें होता है या निष्पन्न सम्बन्धियोंमें होता है ? यदि कहो कि अनिष्पन्न सम्बन्धियोंमें समवाय सम्बन्ध होता है तो यह बात तो सुनते ही असंगत लग रही है । जब उसका सम्बन्धी है ही नही, उनका उत्पाद ही नही होता तब फिर सम्बन्धियोंमें समवाय सम्बन्ध कैसे लग जायगा । यदि कहो कि निष्पन्नोंमें समवाय सम्बन्ध लगता है तो जो पदार्थ निष्पन्न हैं, उत्पन्न हो चुके हैं, स्वयं हैं, परिपूर्ण हैं, उनमें तो संयोग सम्बन्ध ही लग सकेगा । समवाय संबंध की उन्हें आवश्यकता ही क्या है ? पदार्थ तो स्वयं अपने स्वरूपमें निष्पन्न है। तो न तो अनिष्पन्नके विकल्पमें समवायकी प्रतिष्ठा रहती है और न निष्पन्नके विकल्पमें समवायकी प्रतिष्ठा रहती है ।

समवायियोंसे असम्बद्धत्व व सम्बद्धत्व दोनों विकल्पोंमें समवायत्व की असिद्धि—अच्छा अब यह बतलावो कि समवाय समवायियोंसे असम्बद्ध है या सम्बद्ध है ? यदि मानोगे कि समवायी पदार्थोंसे समवाय असम्बद्ध है याने समवायी दो पदार्थोंमें जैसे द्रव्य, गुण, आत्मा, बुद्धि, कुछ भी ले लो, उन दो पदार्थोंसे समवाय सम्बन्ध नही है तो असम्बन्ध होनेपर अर्थात् समवायोंमें समवायका सम्बन्ध न रहनेपर समवायी पदार्थोंका समवाय है, इस प्रकारका व्यपदेश नही बन सकता है । यदि कहो कि समवायी पदार्थोंसे समवाय सम्बद्ध है तो यह बतलावो कि उन समवायी पदार्थोंमें यह समवाय स्वतन्त्र ही सम्बद्ध हो गया या किसी परसे सम्बद्ध हुआ है ? जैसे घट और रूप, घटमें रूपका समवाय माना जा रहा है तो घट और रूपमें समवायका जो सम्बन्ध बना है सो क्या यह सम्बन्ध स्वतः बना है या किसी अन्य समवाय आदिकके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समवायको विशेषण सिद्ध करनेकी शंकाकारकी चर्चा—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि जिस सत्के द्वारा विशिष्ट ज्ञान होता है वह विशेषण होता है, जैसे नील कमल कहा तो उस नीलापनेसे विशिष्ट कमल है ऐसा ज्ञान होता है ना, तो कमलका नील विशेषण बन गया। तो इसी प्रकार इन समवायोंसे विशिष्ट समवायी है, यहाँ ऐसा समवायी द्रव्यका जो ज्ञान होता है उस ज्ञानमें समवाय विशेषण कहलायेगा और फिर यदि यह पूछा कि समवाय है इस प्रकारके ज्ञानमें विशेषण क्या कहलायेगा ? तो उसकी बात सुनो ! समवायत्व सामान्य तो माना नहीं गया, इस कारण से स्वप्न तो मनमें लाना हीं न चाहिए कि समवायका समवायत्व विशेषण है और समवायत्वके समवायसे समवाय समवाय कहलाता है। तब बात है क्या कि समवाय प्रतिभासमान होता है। समवाय है इस प्रकारके ज्ञानमें तंतु और पटादिक समवायी द्रव्य वे भी प्रतिभासमान नहीं हो रहे, क्योंकि समवाय है इतना ही तो ज्ञान किया जा रहा है। तो समवाय है इस ज्ञानमें न तो समवायत्व विशेषण बना और जिन दो पदार्थोंका समवाय बन रहा है न वे दो पदार्थ विशेषण बने तब क्या विशेषण रहा ? अदृष्ट पुण्य पाप ! अर्थात् समवाय है, इस प्रकारका जो ज्ञान बन रहा है सो इस ज्ञाताके ऐसे ही पुण्यका उदय है, अदृष्टका उदय है, जिसके कारण यह ज्ञान बन रहा है, क्योंकि जितने ज्ञान बना करते हैं वे सब अदृष्टके कारण बना करते हैं। यहाँ तो ज्ञानकी ही बात समझायी जा रही ना, तो समवाय है इस प्रकारके ज्ञानके उत्पादमें अदृष्टका ही विशेषणपना प्राप्त होता है।

समवायको विशेषण माननेकी शंकाकारकी चर्चाका समाधान—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह सब कथन असंगत है, क्योंकि विशेषणका पहिले अर्थ निर्णीत कर लीजिए जैसे सत्के द्वारा विशेष्यज्ञान उत्पन्न होता है कि यह विशेष्य है। जिस सत्के द्वारा यह ज्ञान उत्पन्न होता है क्या वह विशेषण है, याने जिस सत्के कारण विशेष्य ज्ञान बना, क्या वह सत् विशेषण है, यह आपका अभिप्राय है या जिसका सम्बन्ध प्रतिभासमान हो रहा है, द्रव्यमें। विशेष्यमें जिसको कल्पित किया गया है उसमें जिसका सम्बन्ध प्रतिभासमान होता है क्या वह विशेषण है ? इन दो विकल्पोंमेंसे यदि यह कहा कि जिस सत्के कारण विशेषज्ञान उत्पन्न होता है वह सत् विशेषण है। तो देखो ! ज्ञानकी उत्पत्तिमें नेत्र प्रकाश आदिक भी कारण पड़ते हैं। नेत्र प्रकाश सत्के द्वारा भी विशेष्यज्ञान उत्पन्न हो रहा है तब तो नेत्र प्रकाश आदिकका भी विशेषणपना मानना अनिवार्य हो जायगा। पर किसी भी द्रव्यको निरखकर जो ज्ञान उत्पन्न होता है उस ज्ञानकके क्या ये नेत्र आलोक विशेषण बन जाते हैं ? नहीं। उन्हें करण कह लीजिये, यह बात एक अलग प्रकरणकी है। इससे यह विकल्प ठीक न उतरा कि जिस सत्के द्वारा विशेष्य ज्ञान उत्पन्न होता है वह विशेषण कहलाता है। अब दूसरे विकल्पकी बात सुनो—जिसका सम्बन्ध है वह विशेषण है। यही तो है ना दूसरा विकल्प ? तो यह विकल्प मानोगे यदि कि जिस

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्या विशेषण होगा इस पर भी तो विचार करो ! आपने तो एक व्याप्ति बना दी कि जो विशेष्य प्रत्यय होता है वह विशेषण पूर्वक होता है । तो समवाय यह विशेष्य प्रत्यय है ना, संज्ञावाचक नाम है ना ? उसका अब क्या विशेषण दोगे ? समवायियों का समवाय है, इस ज्ञानमें विचारणीयताकी बात अलग है, वह प्रसंग दूसरा है, और, जब समवाय है इतना ही प्रत्यय है तो वहां तुम केवल समवाय है इतना ही परिचय कर रहे हो अब वहाँ क्या विशेषण घटेगा सो विचारिये !

समवायको विशेष्य न माननेपर शंकाकारको कनेक अनिष्ठापत्तियां— शंकाकार कहता है कि ऐसा ज्ञान विशेष्य ज्ञान ही नहीं है क्योंकि उसका कोई विशेषण नहीं, फिर अनेकांतिकताकी बात ही कैसे घटेगी ? उत्तरमें कहते हैं कि तब तो फिर समवायोंसे भिन्न जब कोई विशेष्य इस समवाय प्रकरणमें सम्भव न हुआ तो विशेषण ज्ञान भी कुछ मत रहो । याने समवाय है इस विशेष्य ज्ञानको तो मान नहीं रहे और समवायी है, इसको विशेष ज्ञान कहते हो और समवायको विशेषण बनाते हो फिर समवायका ज्ञान करना ऐसे विशेषण बात बनाते हो तो जरा सोचो तो सही जब पहिलेसे ही विशेषणका अभाव है याने समवाय ही नहीं है, समवायियोंसे न्यारा अलग । तब फिर समवायके प्रकरणमें जो विशेष्य बताया है तंतु पट आदिक सो समवायी यह शब्द कहना ही अयुक्त हो गया । तब विशेष्य ज्ञान भी कुछ न रहा । न विशेषण ज्ञान रहा । सो जब दोनों ही न रहे तो अब चर्चा ही किसकी करते ? और, फिर पट है इस प्रकारका ज्ञान विशेष्य कैसे हो सकेगा क्योंकि विशेषणके अभाव की समानता यहाँ भी है । पटमें क्या विशेषण लगा है । जिससे कोई पट विशेष्य कहलाये ? फिर तो कहीं भी न कोई विशेष्य रहा न विशेषण तब विशेष्य विशेषण की बात ही करना फिजूल है । शंकाकार कहता है कि पट है इस ज्ञानमें जो कारण बना है, वह है पटत्व । पटत्व विशेषण । तो भाई पटमें तो पटत्व विशेषण लगा लेकिन अब समवाय है इस प्रकारके ज्ञानमें क्या विशेषण लगावोगे ? पटके पटत्वकी तरह समवायके समवायत्वका विशेषण बनाओगे । लेकिन समवायत्व तो हो नहीं सकता । एकत्व नहीं माना है । निष्कर्ष यह निकला कि समवायी द्रव्य है इस प्रकारके ज्ञानका समवायपूर्वक सिद्ध करना और उसके लिए विशेष्य प्रत्यय रूपताका हेतु देना यह सब अर्थहीन प्रलाप है । समवाय नामका कोई पदार्थ नहीं और फिर उसका किसी जगह सम्बन्ध हो इसकी तो कहानी ही क्या कहें । पदार्थ जैसा है अखण्ड उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक वैसा ही मानना चाहिए और उसमें जो उसकी अभिन्न शक्तियां ऐसी नजर आयें जो तत्सदृश अन्य पदार्थोंमें भी घटित हों, वह तो कहलाता है सामान्य धर्म । और जो अन्यमें घटित न हो वह कहलाता है विशेष धर्म और, वह अखण्ड द्रव्य निरन्तर परिणमता ही है । तो परिणमन हुए कर्म और उसकी जो आधार शक्ति है वह है गुण । ये सब जुदे जुदे कहाँ हैं ? और, फिर ऐसे अखण्ड अभिन्न तदात्मक पदार्थमें समवायके कहनेका भी अवकाश कहाँ है ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि यह समवाय है और इस संश्लेषमें समवाय नामका सांकेतिक शब्द है, तो जब सम्बंध का संकेत ज्ञात हो गया जिस किसीको तो उसके लिए फिर समवायी यह भी प्रतिभासमान हो जाता है, यह कहना बिल्कुल असंगत है। इस तरह तो ज्ञानाद्वैत आदिक भी प्रतिभासमान होते हैं, ऐसा भी कह सकते, जिसे कि शंकाकार मान ही नही सकता। उसके सिद्धान्तमें जिस सिद्धान्तका सहारा लेकर जिन्दा चल रहा है उस सिद्धान्तमें ज्ञानाद्वैतको माना ही नहीं। कह सकते हैं हम उस जगह कि जिसने संकेत नही समझा है उस पुरुषको तो शब्द योजना रहित वस्तुमात्र प्रतिभासमें आती है, और जब संकेत समझ लिया तो संकेतके वशसे यह सारा विश्व ज्ञानाद्वैत रूप प्रतिभासमें आता है। यदि कहो कि वह ज्ञानाद्वैतवादी तो अपने शास्त्रसे उत्पन्न हुए संस्कारकी वजहसे विज्ञानाद्वैत है, इस प्रकारका प्रतिभास किया करता है वह तो अप्रमाण है, तो भाई यही बात है तुम्हारे समवायके लिए भी कि तुम भी अपने शास्त्रसे उत्पन्न हुए संस्कार की वजहसे समवाय है, समवायी है, इस प्रकारका प्रलाप किया करते हो। समवाय और समवायी सम्बन्धमें अपने शास्त्रमें लिखा है इस संस्कारके बिना और कुछ भी कारण नही है। कोई भी पुरुष यह समवाय है यह समवायी है, इस प्रकारके ज्ञानका अनुभव नही करता। अब रह गयी दो बातें विशेषवादका शास्त्र और विज्ञानाद्वैतवादका शास्त्र। उनमें यह कहना कि मेरा शास्त्र प्रमाण है, दूसरेका शास्त्र अप्रमाण है, ऐसा कथन तो विद्वानोंकी सभामें शोभा नही देता। यों न समवाय पदार्थकी सिद्धि है और न समवायी विशेषणकी सिद्धि है।

समवाय साधक अनुमानके हेतुमें समवाय प्रत्ययके साथ अनैकान्तिक दोष—शंकाकारने जो यह अनुमान किया है कि सावयवी द्रव्य है, इस प्रकारका जो प्रत्यय है वह विशेषण पूर्वक है विशेष्य प्रत्ययरूप होनेसे जो हेतु दिया गया है कि विशेष प्रत्ययरूप होनेसे, और साध्य बताया है कि विशेषण पूर्वक होता है, किन्तु समवाय है, इस प्रकारका जो ज्ञान होता है वह विशेष्य प्रत्ययरूप तो हो गया मानों, पर विशेषण पूर्वक नहीं है, क्योंकि समवायका विशेषण और क्या माना जायगा ? जो विशेष्य प्रत्यय होता है वह विशेषणकी अपेक्षा नही रखता, एक यह भी बात है, और फिर समवाय है इस प्रकारके ज्ञानके लिए विशेषण कुछ है भी नही, समवायत्व समवायके लिए माना नही गया है इस कारण समवाय है इस प्रकारके ज्ञानके साथ विशेषप्रत्ययत्वात् इस हेतुमें अनेकान्तिक दोष आता है। शंकाकार कहता है कि यहाँ तो हम समवायीका विशेषण समवाय कह रहे हैं, उसपर ध्यान देना चाहिये। समवायका पक्ष मानकर हम उसमें कुछ घटानेकी बात नही कह रहे इस लिए अनेकान्तिक दोष न होगा। यहाँ जो समवायी पदार्थ हैं, तंतु पट आदिक हैं तो उनको विशेषण पूर्वक सिद्ध कर रहे हैं। उत्तरमें कहते हैं कि भले ही तंतु पट आदिकका विशेषणपना बन जाय वहाँ पर जहाँ कि ऐसा प्रतिभास हो कि समवायियोंका समवाय है, लेकिन जहाँ समवाय है इतना ही मात्र अनुभव होता हो, इतना ही परिचय किया जा रहा हो वहाँ पर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वायमें इस समवायी द्रव्यमें हम विशेषपना ला देते हैं याने हम समवायीको विशेष कहने लगेंगे। न भी हो समवाय सम्बन्ध। तो उत्तरमें बात यह है कि फिर तो गधेके सींगके साथ भी विशेषणपना लग जाना चाहिये, क्योंकि अब तो समवाय सम्बन्धके अनुराग बिना भी समवायी द्रव्यका विशेषपनो ला दिया है। तो असत् पदार्थ भी विशेष्य बन जाय विशेषण बन जाय। शंकाकार कहता है कि सम्बन्धसे अनुरक्त द्रव्यादिक तो प्रतिभात सब लोगोंको हो रहे हैं, जैसे—पट है, तो तंतुवोंमें ही अनुरक्त है वह पट, अलग कहाँ है, ऐसा लोगोंको प्रतिभात तो हो रहा है। समाधानमें कहते हैं—हाँ हो रहा है प्रतिभात, सत्य है। मगर इसमें समवाय क्या आ पड़ा ? जिस सम्बन्धसे अनुरक्त ये द्रव्यादिक प्रतिभात होते हैं वह सम्बन्ध कोई,समवाय नहीं है, क्योंकि तादात्म्य सम्बन्धसे भी अनुराग बन जाता है, विशेषण बन जाता है, सम्बन्ध बनता है। तंतु और पटमें कोई अलग पदार्थ नही है तंतुवोंका ही रूप पट कहलाता है। तो उस में तादात्म्य, सम्बन्ध है। तो अनुराग विशेषण सम्बन्ध तो तादात्म्यका भी सम्भव हो सकता है जैसे कि संयोगका। दो द्रव्योंमें जो अन्तर रहित अवस्था है उसको संयोग कहते हैं और संयोगसे सम्बन्धकी प्रतीति हो रही है। तो सम्बन्धसे अनुरक्त द्रव्यादिक प्रतिभात होते हैं तो हों, मगर समवाय नामक पदार्थोंमें इससे सिद्धि नहीं होती ?

समवाय और समवायीकी अप्रतीति—देखो ! न समवाय नामक पदार्थकी सिद्धि है और न किसी प्रकार समवाय विशेषण बनेगा, न समवायी विशेष्य बनेगा, फिर भी अगर समवायके माननेमें आग्रह ही करो कि वह तो समवाय विशेषणपूर्वक ही है तो फिर खरविषाणका आग्रह क्यों नही हो जाता ? जो चीज असत् है उसे विशेष्य विशेषण क्यों नही मान लेते ? कोई यों क्यों नहीं मान बैठता कि यह पट खरविषाणी है अर्थात् यह कपड़ा गधेके सींगसे बना हुआ है ? 'खरविषाणी पट:' ऐसा ज्ञान विशेषणपूर्वक है क्योंकि विशेष्यरूप प्रत्यय होनेसे। यदि शंकाकार यह कहे कि इस अनुमानमें तो आश्रयसिद्धता दोष है मायने खरविषाण कुछ है ही नहीं फिर भी कहते कि यह पट खरविषाण पूर्वक है, यह तो प्रत्यक्ष आश्रयासिद्ध नामका दोष है। तो समाधान भी इसी प्रकारका है कि समवायी द्रव्य है इस प्रकारका ज्ञान विशेषणपूर्वक है, विशेष्य प्रत्ययरूप होनेसे। इसमें भी विशेष प्रत्यत्वमें आश्रयासिद्धता दोष है। समवायी द्रव्य कोई है ही नहीं। और, कोई पुरुष ऐसा अनुभव भी नहीं करता कि यह पट समवायी है। इस ढंगसे किसी मनुष्यका ज्ञान भी नहीं हुआ करता, ऐसी बुद्धि ही नहीं बना करती। तो समवाय नामका कोई पदार्थ नही और न समवायी द्रव्य है ऐसा विशेष्यज्ञान भी किसीको हुआ करता है।

अप्रतिपन्न समय व प्रतिपन्न समयके भेदकी बातमें अतिप्रसङ्ग—इस विषयमें शंकाकार जो यह कह रहा है कि जब तक समवाय इस शब्दसे संकेतको नही जाना तब तक तो लोगोंको संश्लेष मात्र ही प्रतिभासमें आता है, और जब जान गए

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सकेगा। वहाँ यदि यह कहोगे कि दंड आदिकका शब्द योजनाके भावमें ही कि यह यह पुरुष दंडा वाला है, तो लोग देखेंगे ना उस पुरुषको कि इसके हाथमें यह है, सो इसको कहा जा रहा है दंड वाला। लो, इस वस्तुसे यह दंडा वाला कहलाता है। लो इस वस्तुका नाम डंडा है। इस तरह लोगोंको दंड विशेषणकी प्रतीति हो जायगी। तो प्रत्याक्षेपमें यह भी कह सकेंगे कि ये तंतु पट आदिकसे सम्बन्धित हैं, इस तरह कहनेमें सम्बन्धमात्रको तो समझ ही जायेंगे कि सम्बन्धकी बात कह रहे हैं। अब आगे चलिये जिसने दण्ड संकेतको जान लिया है वह 'दण्डी' ऐसा कहनेमें दण्ड विशेषको भी जान जाता है। इसी प्रकार जब समवायको भी विशेषणपनेसे शब्द योजनामें ढलेंगे तो समवायका भी परिचय हो जायगा। तो इस अनुमानसे समवायकी सिद्धि होती है और उस अनुमानमें कोई दोष भी नहीं आता। क्या है वह ? समवायी द्रव्य है, इस प्रकारका ज्ञान विशेषणपूर्वक है विशेष्य प्रत्ययरूप होनेसे दण्डी आदिक प्रत्ययकी तरह, इसका निष्कर्ष यह निकला कि चूंकि समवायी द्रव्य है, विशेष्य उनका हो रहा है। तो अपने आप आ गया कि समवाय विशेषण अवश्य होता है जिसके कारण यह द्रव्य समवायी कहलाता है।

शंकाकारोक्त समवायसाधक अनुमानके हेतुकी असिद्धता—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि शंकाकारने जो यह कहा है कि समवायी द्रव्य है आदिक ज्ञान विशेषणपूर्वक होता है विशेष्य प्रत्ययरूप होनेसे। सो यह सब गहरे अज्ञानका ही विलास है जिससे ऐसा असंगत कहा जा रहा है। अरे इस अनुमानमें जो हेतु दिया गया है कि विशेष प्रत्ययरूप होनेसे वह तो विशेषणासिद्ध है। हेतु दिया गया है यह कि वह समवायी द्रव्य विशेष्यरूप है ऐसा ज्ञान हो रहा है तो समवायी ऐसा ज्ञान कब हो सके जब पहिले यह विदित हो कि समवाय होता है और उसका इसमें अनुराग लगा है, विशेषण है सम्बन्ध लगा है। तो समवायके अनुरागकी जब प्रतीति ही नहीं है, जब समवायका स्वरूप ही सिद्ध नहीं है फिर यों कहना कि समवायी द्रव्य विशेष्य प्रत्यय रूप है, यह तो अपने घरमें बैठकर अपनी ही प्रशंसा करने जैसी बात है। उसीका ही तो प्रसंग चल रहा कि समवाय नामक पदार्थ नहीं है। और शंकाकार यहां यों सिद्ध करना चाहता है कि समवायी द्रव्य है यह ज्ञान समवाय पूर्वक होता है यह कितनी असंगत बात है। जब समवायरूप सम्बन्धकी सिद्धि नहीं है तो समवायी विशेष्य है यह ज्ञान आ कहाँसे जायगा ? और। मान लोगे कि समवाय सम्बन्धकी प्रतीति हो रही है तो फिर अनुमान करना अनर्थक हो गया। ऐसा कौन सा पुरुष है जो समवायसे अनुरक्त द्रव्यका यदि अनुराग है तो अनुमान अनर्थक है और समवायका यदि अनुराग प्रतीत नहीं हो रहा है तो हेतु विशेषणासिद्ध है।

असत् समवायसे समवायीको विशेष्य मान पर खरविषाणमें विशेषण-विशेष्यपनेका प्रसंग—यदि यह कहो कि समवाय सम्बन्ध न होनेपर भी उस सम-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वास्तविक सत् है उसको निरखिये और मोहका विनाश कीजिये अब पदार्थोंके, उन की छटनीमें उधेड़बुन करना कि जो अखण्ड है उसमें भी धर्मोंको भिन्न मानकर स्वतंत्र पदार्थ मानकर उनका भेद न करना और उनका सम्बन्ध बनाना। इस व्यर्थके श्रममें कोई लाभ नहीं है। सीधा मानना चाहिये कि हमारे व्यवहारिक प्रसंगमें जीव और पुद्गल दो जातिके पदार्थ हैं और वे जीव अनन्त हैं। पुद्गल भी अनन्त हैं। उन सब में कुछ भी एक अन्य समस्त जीव पुद्गलोंसे निराला है यों भिन्न निरखनेपर मोहका आश्रय नहीं रहता। और, इस प्रकार मुक्तिके प्रयोजनकी सिद्धि होती है। सो परिकल्पित समवायके माननेसे प्रयोजन नहीं, किन्तु वस्तुको ही स्वयं साधारण असाधारण धर्मात्मक मानो, उसीको कहा गया है कि सामान्य विशेषात्मक पदार्थको निरखो।

समवायकी सिद्धिके लिये शंकाकारका पुनः अन्य एक अनुमान—शंकाकार कहता है कि एक इस अनुमानसे समवायकी सिद्धि हो जाती है, वह अनुमान यह कि समवायी द्रव्य है इस प्रकारका जो ज्ञान है वह विशेषणपूर्वक होता है क्योंकि विशेष प्रत्ययपना होनेसे दंडी आदिकके ज्ञानकी तरह। जैसे किसी पुरुषने ज्ञान किया कि यह दंडी पुरुष है तो इस ज्ञानमें दण्ड विशेषण साथ लगा हुआ है अर्थात् दण्डके सम्बन्धसे यह पुरुष दंडी कहलाता है। इसी प्रकार जब यह ज्ञान होता है कि यह समवायी द्रव्य है तो उससे ही यह सिद्ध है कि इसमें समवाय रहता है तभी तो यह समवायी कहलाता है और इस तरहके परिचयसे समवाय पदार्थकी सिद्धि हो जाती है। इस अनुमानमें यद्यपि साध्य इतना ही कहा गया है कि विशेषणपूर्वक है समवायी द्रव्य है' इस प्रकारका ज्ञान विशेषणपूर्वक है। तो विशेषणपूर्वक ऐसा कहनेमें किन्हीं अन्य विशेषणोंका सम्बन्ध सम्भव नहीं है। जैसे कि तादात्म्य संयोग वाच्य वाचक आदिक सम्बन्ध है, उनका विशेषणपना नहीं लेना है तो फिर क्या लेना है? समवाय का ही अनुराग लेना है अर्थात् विशेषणपूर्वक है इसका अर्थ यह लेना है कि समवाय पूर्वक है। तो यहाँ समवाय ही विशेषण है तब समवायी द्रव्य है इस प्रकारका ज्ञान विशेषण पूर्वक है, इसका अर्थ हुआ कि समवायपूर्वक है। यदि समवाय विशेषण नहीं होता, तो उन पदार्थोंको समवायी द्रव्य है ऐसा कैसे कहा जा सकता है? यहाँ कोई यदि यह कहे कि जिसने संकेत नहीं जाना, समवायको नहीं जाना उसके तो समवाय इस प्रकारके प्रतिभासका अभाव हो जायगा अर्थात् समवायके अपरिचयमें किसी पदार्थ को समवायी ऐसा भी तो नहीं कह सकते, फिर समवायमें विशेषणपना कैसे आयगा? इसके प्रत्याक्षेपमें यह कह सकते हैं कि दंड आदिकमें भी तो यह बात समान है। जिसने दंडको नहीं जाना वह दंड ही क्या समझेगा? कोई दंड इस शब्दको न जानता हो, और उसके सामने दंड कहा जाय तो वह तो दंडका अर्थ न समझ पायगा अथवा दंड को और कुछ कहता हो कोई तो दंड कहनेसे वह दंडको तो न समझ पायगा। तो दंड का संकेत जब किसीको ज्ञात नहीं है तो उसको 'दंडी' ऐसा प्रतिभास हो न सकेगा। तो दंड भी विशेषण न रह सकेगा और फिर 'दंडी' इस प्रकारका ज्ञान भी न हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हो रही। विशेष्यको फिर छोड़ दिया गया। तब फिर किसी भी जगह सत्ताके सम्बन्ध में कोई भी विशेषण बन बैठे। घट पट वगैरह ये विशेषण सब व्यर्थ हो जायेंगे, क्यों कि सत्ताका सर्वथा एक रूपसे प्रतीति होना मान लिया ना, फिर विशेषण सहित सत्त्व का याने अवान्तर सत्त्वका तो कोई जिकर ही नहीं रहा। सर्वथा यदि सत्ता एक हो तो घट पट आदिक सबका लोप हो जायगा, अथवा किस ही पदार्थमें किस ही पदार्थ को कह दिया जायगा। सत्ता तो एक ही है ना? तो इस प्रकार सत्ताका जो दृष्टान्त दिया है उसमें एकपना नहीं पाया जा रहा याने साध्य भी नहीं है। यों दृष्टान्त याने सत्त्व साध्यविकल हुआ। अब उसकी साधन विकलता देखिये! सत् प्रत्ययकी अविशेषता यह हेतु ही तो दिया गया था समवायका एकत्व सिद्ध करनेके लिये। सो यह हेतु दृष्टान्तमें याने सत्त्वमें नहीं पाया जा रहा। जितने पदार्थ हैं, जितने सत् हैं उन सब विशेषणोंमें सत्की प्रतीति हो रही है। पदार्थोंको छोड़कर सत्त्व एक अलग क्या है जिसका कि सम्बन्ध हो और, फिर सत् कहलाये? तो समवायको एक सिद्ध करनेके लिए जो सत्ताका दृष्टान्त दिया है वह दृष्टान्त साध्य विकल तथा साधन विकल होने से अयुक्त है। न सत्ता एक है, न समवाय एक है, और सत्ता समवाय वस्तुतः कुछ पदार्थ ही नहीं है। जो पदार्थ हैं उनको ही साधारण धर्म और असाधारण धर्मकी दृष्टिसे हम उसमें व्यवहार किया करते हैं सो इन्हींको तिर्यक और ऊर्ध्वताके रूपमें निरखनेपर गुण कर्म सामान्य विशेष प्रतीत होते हैं। अब एक ही अखण्ड पदार्थको बुद्धि भेदसे उनके धर्मोंमें भेद डालकर उनको स्वतंत्र सत् मान लेना और ऐसी गल्ती करनेके बाद फिर जब उनका परस्परमें जुड़ाव करनेकी समस्या आती है तो उस समस्या को सुलझानेके लिए एक कल्पित समवाय पदार्थ माननेका इतना जो श्रम किया जा रहा है वह सब व्यर्थका श्रम है। बड़े विवेकसे सर्व पदार्थोंको जो कि उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त हों अपने आपमें परिपूर्ण स्वतत्र निरखते जावो।

निर्मोहताके निष्पादक ज्ञानमें ज्ञानत्वका यथार्थ व्यपदेश—देखिये! समस्त ज्ञानोंका प्रयोजन यही है ना कि मोह हटे। जिस मोह अंधकारमें रहनेसे यह जीव दुःखी हो रहा है यह मोह अन्धकार दूर हो इसके लिये सम्यग्ज्ञान है। धर्म पालन है। तपश्चरण है। तो मोह मेटनेका मूल प्रयोग तो सम्यग्ज्ञान है, सो इसको भी समझ लीजिये कि हम इन प्रत्येक उत्पादव्यय ध्रौव्यमय पदार्थोंको निराला, स्वतंत्र परिपूर्ण निरखते हैं तो इस निरखनमें मोहका अवकाश नहीं रहता। समस्त पदार्थोंमें जो व्यवहारमें आये हैं, परिचयमें आ रहे हैं वे पदार्थ दो हैं – जीव और पुद्गल। तो जीव और पुद्गलमें भेद डालनेकी बात करनी है। जीव और पुद्गल ये भिन्न भिन्न स्वतंत्र पदार्थ हैं। यह निरखनेके लिये आत्मसत्त्व और इन पुद्गलोंका सत्त्व यही तो समझना है। समझ लिया, तो बाह्यमें पुद्गल अणु हैं, ये रूप, रस, गध, स्पर्शात्मक हैं। इसमें परिणमपनेका उनका अपना काम है। मैं अपने ही चेतनसे सत् हूं, अपनेमें अपने आपसे परिणमता रहता हूं इतनी ही बात तो निरखना है। सो जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है समवायमें, सभी द्रव्योंमें मैं माना ही है, इह इस प्रकारका ज्ञान होता ही है इस हेतुसे समवाय एक है ऐसा कहनेमें जो इह इस ज्ञानकी अविशेषता बताई गई वह भी असिद्ध है। देखो ! इस आत्मामें ज्ञान है, इस पटमें रूपादिक है इस प्रकार इह प्रत्ययमें भी विशेषतायें देखी जा रही हैं और प्रत्ययकी विशेषताके मायने है क्या कि विशेषणके साथ उनका सम्बन्ध जुड जाना। आत्मामें ज्ञान है तो देखो ! वहां इह संकेत दूसरा है। पटमें रूपादिक हैं तो देखो, इसमें इहका संकेत दूसरा है तो विशेषणोंका जो सम्बन्ध है वही ज्ञानकी विशिष्टताको बतला रहा है। तो इह इस प्रकारके ज्ञानमें भी बहुत बहुत विशेष है, इस कारण वे सब हेतु समवायको एक सिद्ध न कर सकेंगे, ऐसा भी नही कहा जा सकता कि चूंकि समवायोंमें अनुगत ज्ञानकी प्रतीति हो रही है सो समवायकी एकता सिद्ध हो जाती है। शंकाकारने ऐसा कहा था कि चूंकि समवायोंमें अनुगत प्रत्यय हो रहा है, यह भी समवाय है, यह भी समवाय है और ऐसे प्रसंगके कारण समवायमें एकपना सिद्ध हो जाता है। यह यों नहीं कहा जा सकता कि अनुगत प्रत्ययकी प्रतीति होनेसे एक सिद्ध हो यह नियम नहीं है। देखो ! गोत्व, घटत्व, अश्वत्व आदिक सामान्योंमें यह भी सामान्य है यह भी सामान्य है यों तथा छहों पदार्थोंमें यह भी पदार्थ है, यह भी पदार्थ है यों अनुगत प्रत्ययकी उत्पत्ति प्रतीत हो रही किन्तु अनुगत एकत्व कुछ भी नहीं है याने अनुगत एकत्वका अभाव है। देखो—सामान्य अनेक हैं ना—गोत्व सामान्य और सबमें सामान्य सामान्यकी प्रतीति चल रही है और उनमें एकता है नहीं तो अनुगत प्रत्ययकी प्रतीति होनेके कारण एकताकी सिद्धि हो जाय सो बात नही।

समवायके एकत्वको बताने वाले अनुमानके दृष्टान्तमें साध्यविकलता एवं साधनविकलता—अब और भी अन्य दोष समवायके एकत्वसाधक अनुमानमें देखिये ! शंकाकारने इस अनुमानमें जो दृष्टान्त दिया है कि सत्ताकी तरह। जैसे सत्में अनुगत प्रत्यय होनेके कारण सत्ता जैसे एक है, इसी प्रकार समवायमें यह भी समवाय, यह भी समवाय यों अविशेष प्रत्यय होनेके कारण समवाय भी एक है, समवायकी एकताके समर्थनमें, अनुगत प्रत्ययके हेतुके समर्थनमें जो सत्ताका दृष्टान्त दिया वह भी साध्यविकल है व साधनविकल है। इसमें साध्य तो बताया गया था एक होना और साधन बताया गया था प्रत्ययकी अविशेषता। तो सत्ताके सम्बन्धमें दोनों ही बातें सिद्ध नही हो रही। 'सत् प्रत्ययकी अविशेषता है" सत्तामें यह भी सिद्ध नही हो रहा क्योंकि सत्तामें सर्वथा एकत्व मान लेनेपर पट है, इस प्रकारके ज्ञानकी उत्पत्तिमें सर्वप्रकारसे अविशिष्ट सत्ताकी ही प्रतीति रहना चाहिए और फिर कहीं भी सत्ताका संदेह न रहना चाहिये। इससे मालूम होता है कि सत्ता सर्वथा एकरूप नही है। जितने पदार्थ हैं उतने रूपसे ही सत्ताका ज्ञान हो रहा है। यदि सत्ताकी सर्वथा एक रूपसे ही प्रतीति की जाना मान लिया जाय तब फिर जो विशेष्य अर्थ हैं, जिनको कि सत् कहा जा रहा है उन विशेष अर्थोंकी प्रतीति न होगी क्योंकि सत् सामान्यकी प्रतीति

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निमित्त पाकर उस उस विकाररूप परिणम गये। जब कोई जीव शुद्ध होता है तो वही जीव अपने आपकी योग्यताके अनुकूल स्वयं शुद्धरूप परिणम गया। जीवमें व सभी द्रव्योंमें स्वयं परिणमनेकी शक्ति है और वह निरन्तर नवीन अवस्थासे परिणमता पुरानी अवस्थाको विलीन करता। द्रव्य वहीका वही है। पुद्गलमें भी यह बात है—रूप, रस, गंध, स्पर्श वाले पुद्गल अनेक सूक्ष्म स्कंध हैं, अनेक विपुल स्कंध हैं, परमाणु तो सदा सूक्ष्म कहलाता है। इन सबमें भी निरन्तर उत्पाद व्यय और ध्रौव्य है, जो कि प्रकट दिखता है, जैसे कि अभी घटके दृष्टान्तमें कहा गया है।

धर्म अधर्म, आकाश व काल द्रव्यमें त्रितयमयी सत्ताका दिग्दर्शन— धर्म द्रव्य यह भी अपनी षडगुण हानि वृद्धिसे निरन्तर परिणमता रहता है, यह अमूर्त द्रव्य है, पर द्रव्य है। इसका परिणमन आगम गम्य है। हम आप इसके परिणमनको नही समझ सकते। अथवा केवल ज्ञानगम्य है। इसी प्रकार अधर्म द्रव्यका परिणमन भी सूक्ष्म है, अमूर्त है, भिन्न द्रव्य है, वह भी आगमगम्य है। आकाश द्रव्यका बोध अंदाजा तो कर लेते हैं कि जो यह पोल है, जिसमें हम समाये हुए हैं, चीजें रखी जाती हैं, वह आकाश द्रव्य है। लेकिन आकाश द्रव्य भी अमूर्त है, पर है। उसमें निजमें क्या निरन्तर परिणमन होता रहता है इसको भी हम नहीं समझ पाते, वह भी आगमगम्य है। काल द्रव्य—लोकाकाशके एक एक प्रदेशपर एक एक काल द्रव्य अवस्थित है और वह अपने आपमें समयरूप परिणमन करता रहता है। एक समयमें क्या होता है इस को हम परिवर्तन शब्दसे नहीं कह सकते। परिवर्तन होता है मुकाबलेमें। दो समयके परिणमनमें हम परिवर्तनका व्यपदेश कर सकते हैं। एक ही समयमें किए हुए पदार्थ में उसको वर्तना शब्दसे कहा गया है। अपने सत्त्वमें रहना, इतनेमें एक समयका कार्य है। तो प्रत्येक लोकाकाशके प्रदेशपर जो एक एक कालाणु अवस्थित है उसमें जो समय नामका परिणमन होता रहता है वह समय परिणमन जब बहुत समयका सम्बन्ध जोड़कर कहा जाता है तो वह व्यवहारके योग्य होता है। इसी कारण आवली, पल, घड़ी, घंटा साल, पल्य, सागर इन सबको व्यवहारकाल कहा गया है।

सर्व पदार्थोंमें सामान्यविशेषात्मकताकी सिद्धि— छहों जातिके पदार्थों में उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकता पायी जा रही है। अब उन्हींको हम सामान्य विशेषात्मक ढंगसे देखें तो सामान्य तत्त्व हुआ [illegible] खाकर। इस ही सत्त्वको अथवा द्रव्य के लक्षणको कहा गया है—गुण पर्याय वाला हो सो द्रव्य है। उसमें भी गुणकी समता तो है ध्रौव्यसे और पर्यायकी समता है उत्पादव्ययसे। यों प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्य इन तीन तत्त्वों स्वरूप है। और, इसी लिए वे सत् हैं। इस प्रकार का सत्त्व समवायमें कहां? उत्पाद हो, व्यय हो फिर भी रहें ऐसी कोई चीज हो सब

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो सद्भूत है। धर्म बिना धर्मी कहाँ ? विशेष धर्म हो अथवा सामान्य धर्म हो, वह है क्या ? वस्तुकी जो शाश्वत शक्ति है धर्म है वह तो वस्तुकी अभिन्न शक्ति हुई और जो मिटने वाली बदलने वाली जरूरी बात है वह परिणमन हुआ। तो यों पदार्थोंमें वे सब कल्पनासे जानी गई चीजें हैं। गुण, कर्म, सामान्य, विशेष समवाय सद्भूत नहीं हैं। जो सद्भूत है उसे पदार्थ कहते हैं। तो पदार्थ ये ही ६ जातिके सही सिद्ध हुए। अब उनका मूल लेकरके विस्तार बढ़ता जाय तो भेद प्रभेद भी युक्त होंगे ? यों प्रमाणका विषय पूछा गया था। उसके उत्तरमें यह सिद्ध किया गया कि सामान्यविशेषात्मक पदार्थ ही प्रमाणका विषयभूत होता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com